बङ्किमचन्द्र चटर्जी



हिन्दी प्रेस, प्रयाग

बालचरित-माला सं०—६

बङ्किमचन्द्र चटर्जी

लेखक

श्री० अवध उपाध्याय

सम्पादक

रामजीलाल शर्म्मा

प्रकाशक

हिन्दी प्रेस, प्रयाग

प्रथम बार]   [मूल्य ।)

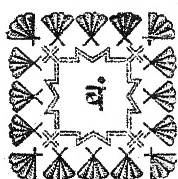
मुद्रक और प्रकाशक
रघुनन्दन शर्मा, हिन्दी प्रेस, प्रयाग

विषय-सूची

—:※:—

बङ्किमचन्द्र चटर्जी

वंश-परिचय



गाल में चौबीस परगना नामक एक ज़िला है। यह कलकत्ते से बहुत दूर नहीं है। इसी ज़िले में काँटालपाड़ा नाम का एक गाँव है। काँटालपाड़ा गाँव भी कलकत्ते के समीप ही है। यह कलकत्ते से केवल १२ कोस की दूरी पर बसा है। कलकत्ते से रेल भी यहाँ जाती है। यहाँ कलकत्ते से रेल द्वारा एक घंटे में पहुँच जाते हैं। इस चरित के नायक वंकिम-चन्द्र चटर्जी की यही जन्मभूमि है। जिस दिन वंकिम बाबू इस गाँव में पैदा हुए थे, उस दिन कौन जानता था कि यह अपने समय के सर्वश्रेष्ठ उपन्यास-लेखक होंगे? कौन जानता था कि यह बालक अपनी प्रतिभा से सारे बंगाल को एक दिन चकित

कर देगा और अपना नाम बँगला-साहित्य में सदा के लिए अमर कर देगा।

बंकिमचन्द्र चटर्जी के पिता का नाम यादवचन्द्र था। यह खूब गोरे थे। इनकी गणना बड़े बुद्धिमान और तेजस्वी पुरुषों में की जाती थी। इनके दो विवाह हुए थे। पहली शादी से इनके कोई लड़का नहीं हुआ। दूसरी शादी से श्यामाचरण, संजीवचंद्र, बंकिमचन्द्र और पूर्णचन्द्र ये चार पुत्र उत्पन्न हुए।

बंकिम बाबू के पूर्वजों के विषय में अनेक अद्भुत बातें कही जाती हैं, परन्तु यहाँ पर उनका उल्लेख नहीं किया जायगा। तथापि बंकिम बाबू के पिता यादवचन्द्र की एक कथा का उल्लेख करना आवश्यक जान पड़ता है। यादवचन्द्र के शरीर में एक बड़ा फोड़ा होगया था। इस फोड़े ने उन्हें बिल्कुल निर्बल कर दिया था। अन्त में इस फोड़े ने बड़ा ही विकराल रूप धारण किया। यादवचन्द्र के अंग सड़ सड़ कर गिरने लगे। वैद्यों तथा डाक्टरों ने इस रोग को असाध्य कह कर दवा करना छोड़ दिया। तथापि इनके घर के लोग यथाशक्ति उसकी औषधि करते ही चले गये। यह रोग धीरे धीरे बढ़ता ही गया। अब सब लोगों को निराशा होगई। सब लोगों ने अपने मन में समझ लिया कि अब इनकी मृत्यु अवश्य होगी। एक दिन उनकी दशा बहुत बिगड़ने लगी। सब लोग उनका अन्त समय जानकर उदास होगये। अन्त में वैसा ही हुआ। यादवचन्द्र की

आत्मा इस भौतिक शरीर को छोड़ कर स्वर्ग में चली गई। तोता उड़ गया, पिंजड़ा सूना रह गया !

यादवचन्द्र के घर हाहाकार मच गया। सब लोग रोने लगे और छाती पीटने लगे। देखते-देखते गाँव के लोग भी एकत्रित होगये और अर्थी सजाई जाने लगी। जब अर्थी घर के बाहर निकली तब उनके घर के लोगों के आर्त्तनाद से सारा गाँव दहल गया। परन्तु अब यहाँ रुकने का अवसर नहीं था। अर्थी बैतरणी नदी के किनारे पहुँचाई गई।

वहाँ चिता सजाई गई। उसके पास ही अर्थी पर यादवचन्द्र का शव रक्खा था। उस समय यादवचन्द्र के सम्बन्धी लोग रो रहे थे, क्योंकि इनकी अवस्था अभी बहुत ही कम थी।

जब चिता सब तरह से तैयार होगई तब सब लोगों ने दाह-संस्कार करने का विचार किया।

इसी समय सब लोगों ने सुना—"ठहरो ठहरो, यह क्या कर रहे हो ?"

इस बात को सुनकर सब लोग स्तंभित रह गये। थोड़ी देर के बाद इन लोगों ने देखा कि एक भीमकाय मनुष्य सामने से आ रहा है। वे एक संन्यासी के रूप में थे। इनकी तेजस्विता सब लोगों के हृदयों पर अपना सिक्का जमा रही थी। वे जटा बाँधे हुए थे। उनके मुँह से एक विचित्र तेज बरसता था। संन्यासी आकर मृतक यादवचन्द्र

के पास खड़े हो गये। उन्होंने उस शव को बड़े ध्यान से देखा। थोड़ी देर के बाद उन्होंने सब लोगों से कहा—इसे यहाँ क्यों लाये हो? और चिता क्यों सजाई गई है?

सब लोगों ने कहा—महाराज! हम लोग इस शव के साथ फिर क्या करते?

संन्यासी ने कहा—यह मरा तो नहीं है।

एक—मरा नहीं है?

संन्यासी—नहीं, अभी तो यह मर ही नहीं सकता।

संन्यासी के इस कथन पर बहुत लोगों को तो आश्चर्य हुआ और बहुत लोगों के हृदय में आशा का संचार हो आया।

अब संन्यासी अर्थी के चारों ओर घूमने लगे। थोड़ी देर के बाद वह बैठ गये और ध्यान-मग्न हो गये। अब धीरे धीरे उस शव में जान का संचार होने लगा और थोड़े समय में उसकी संज्ञाशून्यता नष्ट हो गई। एक घंटे में यादवचन्द्र उठ बैठे और अपने चारों ओर उत्सुक नयनों से देखने लगे। सब लोगों ने उनसे सब बातें कहीं। सब लोगों को बड़ा आश्चर्य हुआ।

उस दिन संन्यासी चले गये। धीरे धीरे यादवचन्द्र का सारा शरीर रोग रहित हो गया।

इसके बाद एक दिन संन्यासी ने फिर उन्हें (यादवचन्द्र को) दर्शन दिया और उनसे कहा—तुम्हारे घर एक धर्मात्मा तथा तेजस्वी पुत्र उत्पन्न होगा जो साहित्य में बड़ा नाम पैदा करेगा।

बंकिम बाबू के पिता यादवचन्द्र चटर्जी मिदनापुर के डिप्टी कलेक्टर थे। उन्हें राय की पदवी भी मिली थी। इसलिए वे राय यादवचन्द्र कहलाते थे। इनकी माता बहुत अच्छी तथा करुणामयी स्त्री थीं। वे देखने में कुछ मोटी अवश्य थीं, परन्तु दयालुता तथा परोपकार आदि गुणों में साक्षात् देवी थीं।

बंकिम बाबू का जन्म २७ वीं जून सन् १८३८ ई० को काँटालपाड़ा नामक गाँव में लगभग ९ बजे रात के हुआ था।

बंकिम बाबू के जन्म के विषय में भी एक असाधारण घटना कही जाती है। दिन में ही बंकिम बाबू की माताजी को प्रसव-वेदना होने लगी थी। परन्तु गाँव की दाई ने कहा कि नहीं, आज तो अभी किसी प्रकार से लड़का हो ही नहीं सकता। सब लोगों को भी विश्वास होगया कि वास्तव में आज लड़का न होगा।

जब लड़का होता है, तब शंख-ध्वनि अवश्य की जाती है। और किसी स्त्री की प्रसव-वेदना के समय शंखध्वनि पुत्र उत्पन्न होने का ही लक्षण है।

लगभग नौ बजे रात को सूतिका-गृह में शंख-ध्वनि सुन पड़ी। सब लोग दौड़ कर सूतिका-गृह के चारों ओर एकत्रित हो गये। सब लोगों ने समझा कि यादवचन्द्र के पुत्र उत्पन्न हुआ है। इसीलिए शंखध्वनि हुई है, परन्तु अभी तक कोई भी लड़का उत्पन्न नहीं हुआ था।

सब लोगों ने आश्चर्य के साथ एक दूसरे को देखना प्रारंभ कर दिया। अब यह प्रश्न उपस्थित हो गया कि शंख किसने बजाया है ?

बहुत प्रयत्न करने पर भी इसका पता नहीं चला और न सूतिका-गृह के पास कहीं शंख ही मिला। अन्त में सब लोगों को बड़ा आश्चर्य हुआ। परन्तु थोड़ी देर के बाद ही बंकिमचन्द्र चटर्जी का जन्म हुआ।

बङ्किम बाबू का बचपन

बङ्किम बाबू के पिता यादवचन्द्र चटर्जी मेदिनीपुर के डिप्टी कलेक्टर थे। इसलिए बङ्किम बाबू का बचपन मेदिनीपुर में ही अधिक बीता। जब बङ्किम बाबू की अवस्था लगभग पाँच वर्ष की हुई तब इनके माता-पिता ने इन्हें पढ़ाने का विचार किया। इनके पहले गुरुजी का नाम रामप्राण सरकार था। वर्णमाला का सम्पूर्ण ज्ञान उन्हें एक ही दिन में हो गया। इसमें भी संदेह नहीं कि रामप्राण सरकार और लड़कों की अपेक्षा बङ्किम बाबू पर अधिक ध्यान देते थे, परन्तु वर्णमाला के सब अक्षरों को एक ही दिन में पहचानना बिना असाधारण प्रतिभा के हो ही नहीं सकता। इस बात से सब लोगों को वास्तव में बड़ा आश्चर्य हुआ। इस संबंध में कुछ आदमियों ने कहाः—

"होनहार बिरवान के होत चीकने पात।"

बङ्किमचन्द्र चटर्जी सन् १८४३ ई० में मेदिनीपुर आये थे। सन् १८४४ ई० में वे अँगरेज़ी स्कूल में भरती कर दिये गये। पता नहीं क्यों, बङ्किम बाबू का मन पहले अँगरेज़ी पढ़ने में नहीं लगता था। इसके लिए एक दिन अँगरेज़ी अध्यापक ने इन्हें डाँटा था। तब इन्होंने थोड़ी देर में ही बहुत कुछ याद करके अपने मास्टर को सुना दिया। कहा जाता है कि इस बात से अँगरेज़ी अध्यापक को इनकी प्रतिभा का पूरा पता चल गया।

यह प्रायः देखा गया है कि जो लोग अपने जीवन में पीछे प्रसिद्ध होते हैं, वे लड़कपन में ख़ूब खेलते हैं और प्रायः शरारती भी होते हैं। परन्तु यह बात बङ्किम बाबू के बारे में लागू नहीं होती। लड़कपन में ही वे बहुत शान्त स्वभाव के बालक थे।

किसी ने सच कहा है:—

नये वयसि यः शान्तः सःशान्तः इति कथ्यते।
धातुषु क्षीणमानेषु शमः कस्य न जायते॥

और सब लड़के तो स्कूल से आकर दौड़-धूप करते और फुटबाल आदि खेलों में लगते थे, परन्तु बङ्किम बाबू उस छोटी अवस्था में भी खेल-कूद बिलकुल ही नापसन्द करते थे।

हाँ, बङ्किम बाबू ताशबाज़ी अवश्य पसन्द करते थे और ताश खेलने में कई घंटे लगा देते थे।

विवाह

भारत में बाल-विवाह का रोग आज का नहीं, बहुत पुराना है। बङ्किम बाबू भी इसी रोग के शिकार हुए थे। पहले ही लिखा जा चुका है कि बंकिम बाबू का जन्म काँटालपाड़ा नामक गाँव में हुआ था। काँटालपाड़ा के पास ही नारायण-पुर नाम का एक गाँव है। उसी गाँव में एक बड़ी सुन्दर बालिका थी। इसकी अवस्था अभी केवल पाँच वर्ष ही की थी। परन्तु उस छोटी अवस्था में भी उसकी सुन्दरता की सब लोग बड़ी प्रशंसा करते थे। उसीके रूप पर बंकिम बाबू के बड़े भाई रीझ गये और उसका विवाह भी उन्होंने प्रयत्न करके बंकिम बाबू के साथ करवा दिया। इस समय बंकिम बाबू की अवस्था केवल ग्यारह वर्ष की थी।

जब बंकिम बाबू की अवस्था बाईस वर्ष की हुई, तब उन की धर्मपत्नी का देहान्त होगया। मृत्यु के समय उनकी अवस्था सोलह वर्ष की थी। विषम ज्वर के एक झोंके से दीपक बुझ गया!

स्त्री के मर जाने पर बंकिम बाबू को बड़ा खेद हुआ। वे एकान्त में बैठ बैठ कर खूब रोये। बंकिम बाबू को स्त्री के लिए रोते हुए बहुत कम लोगों ने देखा था। वे किसी के सामने रोने में अपना अपमान समझते थे।

जब धर्मपत्नी का देहान्त होगया तब बंकिम बाबू जैसोर में डिप्टी मैजिस्ट्रेट थे और उधर काफ़ी मशहूर होगये थे। यहीं पर इनसे और दीनबंधुजी से पहले-पहल भेंट हुई। इन दोनों आदमियों की घनिष्ठता धीरे धीरे बहुत बढ़ गई। इसी अवसर की घनिष्ठता ने आगे चलकर मित्रता का रूप धारण कर लिया। इन दोनों सज्जनों की मित्रता जीवनपर्यंत निभ गई।

दीनबंधुजी से बंकिम बाबू अपनी मरी हुई स्त्री की प्रायः प्रशंसा किया करते थे। इसमें सन्देह नहीं कि धर्मपत्नी के स्वर्ग-वास होने से उन्हें वास्तव में आन्तरिक कष्ट हुआ, परन्तु इस कष्ट को उन्होंने एक साहसी मनुष्य की तरह से सहा।

अँगरेज़ी-अध्ययन

बंकिम बाबू ने मेदिनीपुर में अँगरेज़ी पढ़ना प्रारंभ किया था। हमको यह भी स्मरण रखना चाहिए कि जिस समय बंकिम बाबू ने अँगरेज़ी भाषा का अध्ययन प्रारंभ किया था, उस समय कलकत्ता-विश्वविद्यालय का प्रारंभ भी नहीं हुआ था और न इंट्रेंस, एफ़० ए० आदि परीक्षाएँ ही नियत हुईं थीं। उस समय की परीक्षाओं का नाम जूनियर और सीनियर स्कालरशिप था। बंकिम बाबू आठ वर्ष की अवस्था तक तो मेदिनीपुर में ही पढ़ते रहे।

जब बंकिम बाबू की अवस्था नौ वर्ष की हुई तब उनका नाम हुगली कालेज में लिखा गया। बंकिम बाबू ने अपने जीवन की प्रारम्भिक अवस्था में ही उस स्वतंत्र विचार तथा अपूर्व प्रतिभा का परिचय दिया, जिसके लिए वे इतने प्रसिद्ध हैं। सब अध्यापक लोग बंकिम बाबू की प्रशंसा करने लगे। किसी किसी ने उनकी प्रतिभा की बड़ी प्रशंसा की।

बंकिम बाबू केवल कोर्स की पुस्तकों पर कभी संतोष नहीं करते थे और प्रायः बाहरी पुस्तकों को खूब पढ़ा करते थे। वे बालकपन में भी स्वतंत्र विचार के थे। वे किसी के बंधन में रहना पसन्द नहीं करते थे।

साल भर तो बंकिम बाबू इधर-उधर की पुस्तकें पढ़ा करते थे। परन्तु जब सालाना परीक्षा पास आ जाती थी, तब कोर्स की पुस्तकों को पढ़ने लगते थे। तथापि अपने दर्जे में बंकिम बाबू अव्वल पास होते थे। सन् १८५७ ई० में बंकिम बाबू ने हुगली कालेज की पढ़ाई समाप्त कर दी। अब उन्होंने कलकत्ते में पढ़ने का निश्चय किया। हुगली कालेज में बंकिम बाबू का नम्बर सब लड़कों से अधिक ऊँचा था। इसलिए उन्हें हुगली कालेज की ओर से एक छात्रवृत्ति मिली थी। बंकिम बाबू ने कलकत्ते में एक मकान किराये पर लिया और वे उसीमें रहने तथा पढ़ने लगे।

सन् १८५७ ई० में बंकिम बाबू कलकत्ते गये थे। इतिहास के जाननेवालों को भली भाँति विदित है कि उसी सन् में भारत में बलवा हुआ था और बहुत से अँगरेज़ तथा भारत-वासी मार डाले गये थे। उन्हीं दिनों बंकिम बाबू बिना किसी प्रकार की चिन्ता के अँगरेज़ी पढ़ रहे थे। बहुत लोगों ने लिखा है कि बंकिम बाबू उन दिनों बिलकुल नहीं घबराते थे और प्रायः कहा करते थे कि अँगरेज़ों का राज्य यहाँ से जा नहीं सकता।

सन् १८५८ ई० में कलकत्ता-विश्वविद्यालय का काम प्रारंभ होगया और यह भी घोषणा निकल गई कि पाँचवीं अप्रैल को बी० ए० की परीक्षा ली जायगी। बहुत से साथी तो हिम्मत हार कर बैठ गये, परन्तु बंकिम बाबू ने तो परीक्षा में बैठने का निश्चय कर ही लिया। इसी निश्चय के अनुसार वे बी० ए० की परीक्षा में निर्धारित पुस्तकों को तैयार करने लगे। बंकिम बाबू जिस काम में लग जाते थे, उसमें लग ही जाते थे। सन् १८५८ ई० में केवल तेरह आदमियों ने परीक्षा दी। इस परीक्षा में विद्यासागर भी परीक्षक थे। तेरह विद्यार्थियों में ग्यारह फेल होगये। केवल दो आदमी बी० ए० पास हुए, उसमें बंकिम बाबू प्रथम हुए।

गज़ट में यह समाचार छप गया। उस समय बंगाल के छोटे लाट हालिडे-साहब थे। हालिडे-साहब ने बंकिम बाबू को अपने पास बुलवाया और उनसे बड़ी प्रसन्नता से मिले।

इसके बाद लाट-साहब ने उनसे डिप्टी मैजिस्ट्रेट के पद को स्वीकार करने के लिए कहा। लाट साहब ने समझा था कि इस समाचार को सुनकर बंकिम बाबू हर्ष से उछलने-कूदने लगेंगे। परन्तु बंकिम बाबू ने यह सब कुछ नहीं किया। उन्होंने कहा—मैं इस कृपा के लिए आप का बहुत कृतज्ञ हूँ। परन्तु मैं इस संबंध में आपसे अभी कुछ नहीं कह सकता। मैं इस संबंध में पहले अपने पिताजी से पूछूँगा और जैसा वे कहेंगे, वैसा ही करूँगा।

तब आश्चर्य के साथ लाट-साहब ने कहा—क्या डिप्टी मैजिस्ट्रेट से भी बढ़कर आप कोई नौकरी की आशा रखते हैं? यदि नहीं, तो आप इसे स्वीकार क्यों नहीं करते?

बंकिम बाबू ने कहा—नहीं, मैं पिताजी की सम्मति के बिना कुछ नहीं कर सकता। इसीलिए इस संबंध में मैं अभी कुछ नहीं कह सकता।

तब लाट साहब ने कहा—अच्छा जाओ, अपने पिता से पूछो, परन्तु इस संबंध में शीघ्र उत्तर देना।

जब बंकिम बाबू ने अपने पिताजी से इस संबंध में पूछा तब उन्होंने इस पद के स्वीकार कर लेने के लिए आग्रह किया और सन् १८५८ ई० को २३ वीं अगस्त से बंकिम बाबू ने डिप्टी मैजिस्ट्रेट के पद पर काम करना प्रारंभ कर दिया। बीस वर्ष की अवस्था में बहुत कम लोग डिप्टी मैजिस्ट्रेट के पद पर नियुक्त होते हैं।

संसार-क्षेत्र में

सबसे पहले बंकिम बाबू की नियुक्ति यशोहर में हुई। यहीं यशोहर में बंकिम बाबू तथा दीनबन्धु में मित्रता उत्पन्न होगई, जो जन्म भर तक रही। जब बंकिम बाबू यशोहर में थे तब उनकी पहली स्त्री का देहान्त होगया। उन्होंने यशो-हर में केवल डेढ़ वर्ष के लगभग काम किया था।

कापालिक-दर्शन

सन् १८६० ई० की जनवरी में बंकिम बाबू की बदली नगवा में हो गई। नगवा मेदिनीपुर के ज़िले में है। इसी ज़िले में बंकिम बाबू ने भाषा के अक्षरों का सीखना प्रारंभ किया था। इसप्रकार बंकिम बाबू की बदली उसी ज़िले में हो गई जहाँ उन्होंने पढ़ना प्रारंभ किया था। इसी नगवे में रहते समय बंकिम बाबू ने एक कापालिक का दर्शन किया था।

एक दिन बंकिम बाबू नगवा के अपने घर में आनन्दपूर्वक सो रहे थे। आधी रात के बाद किसी ने बाहरी दरवाज़े पर बड़े ज़ोर से धक्का मारा। उस समय नौकर आदि भी सो रहे थे। परन्तु लगातार धक्का लगने से एक नौकर जाग उठा, धीरे धीरे सब नौकर जाग गये। नौकरों ने उठकर दर्वाज़ा खोला और देखा कि सामने एक अघोरी खड़ा है।

अघोरी ने नौकरों से कहा—अपने बाबू को बुलाओ।

पहले तो नौकरों ने बंकिम बाबू को इसकी सूचना देना अच्छा नहीं समझा, परन्तु कापालिक के बार बार कहने पर उन्होंने उन्हें जगाना ही उचित समझा। अन्त में नौकरों ने बंकिम बाबू को जगाया और उनसे सारा माजरा कह सुनाया। बंकिम बाबू ने दरवाज़े पर आकर देखा कि एक हृष्ट-पुष्ट मनुष्य दर्वाज़े पर खड़ा है। उसका चौड़ा ललाट प्रकाशमय था। उसके वेष से मन में विचित्र भावना उठती थी। उसके हाथ में मनुष्य की खोपड़ी थी और गले में एक रुद्राक्ष की माला तथा एक नरमुंड भी था। उसकी मूँछें बड़ी बड़ी थीं और उसकी दाढ़ी भी बड़ी थी। उसने बाघम्बर की धोती पहनी थी। उसके मस्तक पर कोयले का टीका लगा हुआ था और सारे शरीर में भस्म लगी थी। उसको देखते ही बंकिम बाबू समझ गये कि यह कापालिक है। बंकिम बाबू आश्चर्य-सागर में डूबने-उतराने लगे। उन्होंने आश्चर्य के साथ कहा—यहाँ क्यों आये हो?

उस कापालिक ने बंकिम बाबू के इस प्रश्न का कुछ भी उत्तर नहीं दिया। उसने कहा—मेरे साथ चलो।

बंकिम बाबू ने कहा—कहाँ?

उसने कहा—बालियाड़ी में समुद्र किनारे।

तब बंकिम बाबू ने कहा—नहीं, मैं ऐसा नहीं कर सकता। नगवा समुद्र के पास ही था।

इसके अनन्तर कापालिक ने कुछ भी नहीं कहा। वह चला गया। दूसरे दिन भी रात को फिर वही कापालिक आया और उसने फिर पहले दिन की सारी बातें दुहराईं। तीसरे दिन भी कापालिक आया और फिर वही सब बातें हुईं। इसके बाद फिर वह कापालिक नहीं आया।

कपालकुंडला की रचना

लोगों का कहना है कि इस कापालिक के दर्शन से ही बंकिम बाबू ने कपालकुंडला नामक उपन्यास लिखा है। कपाल-कुण्डला नामक उपन्यास में उन्होंने कापालिक के संबंध में जो वर्णन किया है, वह बालियाड़ी से बहुत कुछ मिलता है। एक दिन जाकर बंकिम बाबू ने इस स्थान को खूब देखा था। कापालिक की घटना सन् १८६० ई० में हुई थी। परन्तु, कपालकुण्डला नामक उपन्यास को बंकिम बाबू ने सन् १८६७ ई० में लिखा था। कपाल-कुण्डला नामक उपन्यास 'दुर्गेशनन्दिनी' के बाद लिखा गया था परन्तु, प्रसंगवश कपालकुण्डला का ही यहाँ पर पहले वर्णन कर दिया जाता है।

कपालकुण्डला नामक उपन्यास को बंकिम बाबू ने सन् १८६७ ई० में लिखा था। कपालकुण्डला प्रकृति की कन्या है, परन्तु मनोहर और सरल भी है। बाल्यकाल में स्वयं प्रकृति ने उसे शिक्षा दी थी। वह सुन्दर थी और मनुष्य की कृपा से पली थी। कपालकुण्डला प्रकृति की सब चीज़ों से शिक्षा ग्रहण

करती थी। यहाँ तक कि तूफ़ान और बवंडर से भी उसने शिक्षा ग्रहण की थी। यह कन्या एक तांत्रिक के पाले पड़ गई थी, जिसका हृदय पत्थर का सा था।

कपालकुण्डला पहले तो महाकवि कालिदास का स्मरण दिलाती है। परन्तु शकुन्तला और कपालकुण्डला में अन्तर भी है। शकुन्तला के यहाँ कुछ ऐसी सखियाँ भी थीं जो उसे सांसारिक बातों की शिक्षा दे सकती थीं।

फिर कपालकुण्डला शेक्सपियर की एक पात्री मिरांडा का भी स्मरण दिलाती है। मिरांडा को भी उसका पिता बहुत कुछ शिक्षा दिया करता था। परन्तु कपालकुण्डला को तो संसार की शिक्षा देनेवाला कोई था ही नहीं।

एक प्रकार से कपालकुण्डला इस संसार की वस्तु ही नहीं थी, उसके विचार इतने स्वतंत्र थे कि वह सामाजिक बंधनों तथा सारी सृष्टि से ही अलग रहना चाहती थी।

जब पहले-पहल कपालकुण्डला ने नवकुमार को देखा तब उसका हृदय आनन्द के मारे नाच उठा। सूर्य के समान उसकी मुखाकृति प्रज्वलित हो उठी और नवकुमार को दूसरे ही संसार का पदार्थ समझा। उसने समझा कि यह स्वर्गीय दूत है। यही समझ कर उसने अपना हृदय नवकुमार को दे दिया। नवकुमार भी उस समय यह नहीं जानता था कि कपालकुण्डला सामाजिक बंधनों की अवहेलना करेगी।

कपालकुण्डला का लड़कपन समुद्र के किनारे तथा जंगलों में कटा था। वह अब भी उसी स्वतंत्रता के लिए मर रही थी। इसीलिए वर्तमान परिस्थिति से उसे संतोष नहीं होता था।

नवकुमार भी उसे अभी तक भली भाँति नहीं समझ सका था। वह उसे सांसारिक दृष्टि से देखता था, परन्तु कपालकुण्डला तो इस संसार की नहीं थी। इसलिए इस संसार का पैमाना उसके लिए कैसे लागू हो सकता था? वह फिर भी उसी समुद्र के किनारे लौट जाना चाहती थी। जब नवकुमार उसकी यह दशा देखता था तब बहुत दुःखी होता था और रोने लगता था। परन्तु इन आँसुओं का उस पर कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ता था। कपालकुण्डला अपने पति से कभी प्रेम न करती थी। नवकुमार के लिए कपालकुण्डला के हृदय में कोई स्थान ही नहीं था।

बंकिम बाबू ने कपालकुण्डला के चरित्र के साथ साथ पद्मावती के चरित्र की अच्छी तुलना की है। कपालकुंडला जितनी सरल है, पद्मावती उतनी ही धूर्त है। एक दयावती है, तो दूसरी कठोर। एक स्वार्थ-रहित है, और दूसरी का ध्येय ही स्वार्थ है। एक पवित्र है, दूसरी अपवित्र। इसी प्रकार दोनों एक दूसरे से प्रतिकूल वस्तुएँ हैं।

कपालकुण्डला को सांसारिक ज्ञान है ही नहीं और पद्मावती का सांसारिक ज्ञान पूर्ण है। इसमें सन्देह नहीं कि दोनों

को स्वतंत्रता प्रिय थी। कपालकुण्डला सुन्दर थी, पवित्र थी और स्वयं प्रकृति का साक्षात् अवतार थी। परन्तु पद्मा इसके बिलकुल विपरीत थी। वह जो चाहती थी, वही करती थी। पद्मा के ऊपर बुरे लोगों का भी प्रभाव पड़ा था। इसलिए वह .खूब घमंड करना भी जानती थी। वह चरित्र-हीन हो गई थी और वासनाओं की तृप्ति करना ही उसके जीवन का उद्देश्य था।

जब पद्मा नवकुमार से मिली तब उसके मन में पवित्र भावनाएँ भी उठीं। इस समय उसके हृदय में एक प्रकार का द्वन्द्व-सा मच गया। इस समय पद्मा के मन में अच्छी और बुरी दोनों प्रवृत्तियों में घोर संग्राम हुआ और अन्त में अच्छी प्रवृत्तियों की विजय हुई और कुछ समय के लिए उसने अपना हृदय नवकुमार को अर्पण कर दिया। कुछ समय के लिए पद्मा ने अपने पति की .खूब सेवा की।

परन्तु पद्मा का यह परिवर्त्तन क्षणिक था, वह फिर अपनी बुरी आदतों का शिकार हो गई और बुरे कर्मों को करने लगी।

कपालकुण्डला के लिखने से बंकिम बाबू की कीर्ति चारों ओर फैल गई और अब सब लोग उन्हें सर्वश्रेष्ठ लेखक गिनने लगे। सब लोगों ने मुक्तकंठ से स्वीकार कर लिया कि बंकिम बाबू बँगला के सब लेखकों से बड़े हैं।

कपालकुण्डला को बंगाल ने बहुत पसन्द किया और सब लोग बंकिम बाबू को आदर की दृष्टि से देखने लगे।

डाक्टर मित्र नामक एक बँगला के समालोचक ने कपालकुंडला की बड़ी कड़ी समालोचना की थी। इस समालोचना में उन्होंने बंकिम बाबू को ख़ूब बनाया था।

खुलना में

नगवे से बंकिम बाबू की बदली खुलना को हो गई। इस प्रकार बंकिम बाबू को नगवे में अधिक दिन तक नहीं रहना पड़ा। नगवा में बंकिम बाबू ने अपना काम बहुत मन लगाकर किया। सरकार भी उनसे प्रसन्न हो गई और उनकी १०० रु० मासिक उन्नति होगई।

खुलना में आकर बंकिम बाबू ने यहाँ की विचित्र दशा देखी। नील की कोठीवाले साहब बहुत अत्याचार करते थे। चोर, डाकुओं का भी राज्य था। कोई देखनेवाला नहीं था। चारों ओर प्रजा पर विपत्ति का पहाड़ टूटा पड़ता था।

मारेल-साहब ने मारेल-गंज नामक एक गाँव बसा दिया था। साहब इस गाँव में ख़ूब मनमानी किया करते थे, परन्तु उनका अत्याचार केवल मारेलगंज में ही परिमित नहीं था। वह आस-पास के गाँवों में भी हमला कर देते थे। इनके पास अत्याचार में सहायता देने के लिए पाँच-छः सौ आदमी लाठी चलाने के लिए रहते थे। इन लठैतों के सरदार का नाम हेली-

साहब था। मारेल-साहब की अधिक संपत्ति बंकिम बाबू के इलाक़े में ही थी।

मारेल-गंज के पास ही बड़खाली नामक एक गाँव था। इस गाँव के लोगों से मारेल साहब की दाल नहीं गलती थी। इस गाँव के लोगों में ख़ूब एकता थी। मारेल साहब और सब गाँवों पर तो मनमाना अत्याचार करते थे, परन्तु इस गाँव के सब लोग मिल कर मारेल साहब के अत्याचार का विरोध करते थे।

एक बार मारेल साहब ने इस गाँव के सब लोगों को तंग करने का निश्चय कर लिया। एक दिन मारेल साहब ने लगभग चारसौ मनुष्यों के साथ हेली साहब को बड़खाली गाँव के सत्यानाश करने के लिए भेज दिया।

अभी सूर्य भगवान् उदय नहीं हुए थे, परन्तु पूर्व दिशा की लालिमा उनके आगमन की सूचना दे रही थी। इसी समय मारेल साहब के लट्ठबंद आदमियों ने बड़खाली गाँव को घेर लिया। किसी के हाथ में लाठी थी, किसी के हाथ में तलवार। किसी के हाथ में भाला और किसी के हाथ में बंदूक़ थी। इस सेना के सेनापति हेली साहब थे।

गाँव के अधिक लोग अभी निद्रा देवी की गोद में पड़े हुए थे। वृद्ध मनुष्य ईश्वर की प्रार्थना कर रहे थे। कुछ लोग उठ भी गये थे।

इसी समय नील की कोठी के मारेल साहेब ने अपनी सेना से बड़खाली गाँव को घेर लिया।

बड़खाली गाँव के लोगों का कुछ भी दोष नहीं था। मारेल साहब जब चाहते थे, तब लगान बढ़ा देते थे। इस गाँव के लोग हर साल बढ़ा हुआ लगान नहीं देना चाहते थे। इसके अतिरिक्त बड़खाली गाँव के लोग नील से तंग आगये थे। वे नील की खेती करना तो अवश्य चाहते थे, परन्तु वे अपने मन के अनुसार नील बोना चाहते थे। इसके विरुद्ध मारेल साहब चाहते थे कि सब लोग अपने खेतों में नील ही की खेती करें। बड़खाली के लोग अपने सब खेतों में केवल नील ही नहीं बोना चाहते थे। यही उनका अपराध था।

मारेल साहब और बड़खाली गाँव में यह झगड़ा बहुत दिनों से चला आता था। प्रायः मारेल साहब इस गाँव पर हमला करते थे और किसी का खलिहान तथा किसी का घर लूट लिया करते थे। कभी कभी मारेल साहब के सिपाहियों और गाँववालों में सिरफुटौअल की नौबत भी आती रहती थी। परन्तु इस प्रकार ग़दर मचा देने का यह पहला ही अवसर था।

बंकिम बाबू ने पहले ही सुन लिया था कि मारेल साहब एक दंगा करने की तैयारी कर रहे हैं। परन्तु इन लोगों को इस बात का पता नहीं था कि वे कहाँ दंगा करेंगे। पुलिस को

भी पता लग गया था कि मारेल साहब किसी एक गाँव पर हमला करेंगे।

इसलिए पुलिस भी मारेल साहब की देख-रेख कर रही थी। मारेल साहब भी अब जान गये थे कि पुलिस को मेरी इच्छा का पता लग गया है। परन्तु वे तो बड़खाली गाँव के सत्यानाश करने पर उतारू हुए थे। अतएव उन्होंने संध्या के समय सरुलिया गाँव की ओर प्रस्थान कर दिया। पुलिस के लोग भी अब समझ गये कि मारेल साहब का हमला सरुलिया गाँव पर ही होगा। पुलिस के लोग सरुलिया गाँव की रक्षा करने के लिए चले गये।

वास्तव में बात कुछ और ही थी। मारेल साहब ने पुलिस को धोखा देने के विचार से ही सरुलिया गाँव की ओर प्रस्थान किया था। इनके चार सौ सिपाही रात के समय नाव में चढ़ कर बड़खाली गाँव की ओर गये थे। इन लोगों ने सूर्योदय से पहले ही बड़खाली गाँव को घेर लिया और पुलिस को इसका पता भी नहीं चला।

सूर्योदय के समय मारेल साहब के आदमियों ने गाँव पर हमला कर दिया। लोग सोये हुए थे, अब उनकी भी निद्रा भंग हुई। गाँववालों ने भी अपने अपने लट्ठ सँभाले और वे भी मैदान में आकर जुट गये। गाँव वालों ने पहले तो समझा कि यह भी पहले की तरह साधारण घटना है। परन्तु जब

वे बाहर आये तब उन्हें पता चला कि इस बार मामला कुछ और ही है।

गाँववाले डर गये। उनका हृदय धड़कने लगा। ऐसा मालूम होता था कि गाँववाले डर के मारे पीछे लौट जायँगे। इसी समय रहीमुल्ला पठान ने सबको संबोधन करके कहा—भाइयो! मरना तो अवश्य है, परन्तु अब पीछे नहीं हटना चाहिए। मर्दों का आज ही तो काम है। इन साहबों को आओ आज मज़ा चखा दें।

इतना कह कर रहीमुल्ला आगे बढ़ा। गाँव के और लोग भी पीछे नहीं हटे। रहीमुल्ला के लट्ठ ने कितने ही साहबों को पृथ्वी पर लिटा दिया। जिधर रहीमुल्ला जाता था, उधर ही रास्ता साफ़ कर देता था। मारेल साहब के सेनापति हेली साहब ने भी इस दृश्य को देखा और उन्होंने अपने मन में कहा कि यदि रहीमुल्ला इसी प्रकार मेरी सेना का नाश करता रहा तो फिर ख़ैर नहीं। हेली साहब ने अपने कुछ चुनेहुए सिपाहियों के साथ रहीमुल्ला पर हमला किया। थोड़ी देर के बाद हेली साहब ने रहीमुल्ला पर अपनी बंदूक़ छोड़ दी और वह घायल होकर ज़मीन पर गिर पड़ा।

रहीमुल्ला फिर उठा और इस अवस्था में भी उसने बड़ी वीरता से लड़ना तथा सबको ललकारना प्रारंभ कर दिया।

गाँववाले लट्ठों का सामना कर सकते थे, परन्तु बंदूक़ों का सामना वे कैसे करते? अन्त में गाँववाले भाग भाग कर अपनी

जान बचाने लगे और मारेल साहब की सेना उनका शिकार करने लगी। इन निर्दयी मनुष्यों ने शस्त्र रहित मनुष्यों और स्त्रियों पर भी हमला किया।

जब रहीमुल्ला ने देखा कि अब गाँववालों के पैर नहीं टिक सकते, तब उसने भी मैदान छोड़ दिया और अपने घर में जाकर छिप गया। घर के आँगन में बैठकर रहीमुल्ला अपने घावों को देख रहा था और उनमें पट्टी बाँध रहा था। उसके घर की दीवारें छोटी थीं। इसी समय एक गोली सनसनाती हुई आई और रहीमुल्ला की छाती में लग गई। रहीमुल्ला अब अपने को न सँभाल सका। वह वहीं पर गिर गया। आज बड़-खाली गाँव का सर्वश्रेष्ठ रत्न मातृ-भूमि की वेदी पर बलिदान हो गया। हेली साहब ने आज बड़खाली गाँव के वीर को सदा के लिए पृथ्वी पर सुला दिया।

जबतक रहीमुल्ला था, तबतक तो गाँववाले उसीके समान गाँव ही में अपनी जान बचाना चाहते थे। परन्तु अब गाँववालों का अन्तिम आश्रय रहीमुल्ला भी जाता रहा। अब गाँववाले कहाँ जायँ और क्या करें?

बड़खाली गाँव में अब कोई लड़नेवाला आदमी नहीं रह गया। तथापि साहब लोग शिकार करते ही चले जाते थे।

बड़खाली गाँव के पास ही एक जंगल था। जब रहीमुल्ला मर गया तब सब लोग उसी जंगल की तरफ भागने लगे। इस समय बड़खाली गाँव की दशा बड़ी करुणाजनक होगई

थी। बड़खाली गाँव को ऐसा दृश्य देखने का आज यह पहला ही अवसर था। जब मारेल साहब के सेनापति हेली साहब ने देखा कि गाँव के सब पुरुष भाग गये हैं, तब उन्होंने गाँव को लूटना प्रारंभ कर दिया। सिपाही लोग जब किसी मकान को लूट लेते थे तब उसे जला देते थे। उन्होंने पहले तो लूट लूट कर गाँव को तबाह कर दिया। उसके बाद उसे ख़ूब जलाया। गाँव में बहुत सी ऐसी चीज़ें भी थीं जो न तो लूटी जा सकती थीं और न जलाई जा सकती थीं। उन्हें इन सिपाहियों ने पानी में फेंक दिया।

औरतों की दशा इस समय और भी बुरी थी। इन नर-पिशाचों ने औरतों के साथ ऐसा वर्ताव किया जो निर्जीव लेखनी से लिखा ही नहीं जा सकता। उसे लिखने के लिए वज्र की लेखनी चाहिए। इन लोगों ने रहीमुल्ला की स्त्री, बहन आदि किसी को भी नहीं छोड़ा।

हेली साहब की सेना को आज बड़खाली गाँव पर अच्छी विजय प्राप्त हुई। इसके बाद यह विजयी सेना लूट के सब सामानों के साथ, जिसमें स्त्रियाँ भी थीं, मारेलगंज पहुँची।

आज प्रातःकाल के समय जो गाँव शान्त था, संध्या समय उसका अस्तित्व ही मिट गया। जिस गाँव में सूर्योदय के पहले बहुत मनुष्य थे, आज उसी गाँव में संध्या समय कोई नहीं रह गया! जिस गाँव में लोग सुख की नींद सो रहे थे, वही श्मशान के रूप में परिणत हो गया!

स्त्रियों के आर्त्तनाद से सब दिशाएँ गूँज उठी थीं। बड़ी दूर तक आग का धुवाँ दिखलाई पड़ता था। जब इस ग़दर का समाचार बंकिम बाबू ने सुना तब वे अधीर हो उठे। उसी समय बंकिम बाबू ने पुलिस को सूचना दी और पुलिस के साथ घटनास्थल की ओर चल पड़े।

जब मारेल साहब और हेली साहब ने सुना कि बंकिम बाबू उनके पकड़ने के लिए आ रहे हैं तब वे रफ़ूचक्कर होगये। इन लोगों का कहीं पता ही नहीं लगा। इस मामले में केवल वे ही बंगाली लोग पकड़े गये, जिन्होंने मारेल साहब की ओर से लाठी चलाई थी।

इन लोगों पर मुक़द्दमा चलाया गया। मारेल साहब की ओर से दौलतराम ने ख़ूब लाठी चलाई थी। दौलतराम को फाँसी का हुक्म होगया। दौलतराम के अलावा चौबीस आदमियों को आजन्म कालापानी का दंड हुआ। इन लठैतों तथा बंदूक़चियों में बहुत से साहब थे। ये सबके सब चोरी से भाग गये और इनका पता ही नहीं लगा। मारेल साहब और हेली साहब का भी कुछ पता नहीं चला।

मारेल साहब ने बड़खाली गाँव को २६ नवम्बर सन् १८६१ ई० में नष्ट किया था। साहब लोग एक वर्ष तक भारत ही में इधर उधर छिपे रहे। इन लोगों ने अपना नाम बदल दिया था। मारेल साहब तो सन् १८६२ ई० में विलायत भाग गये।

हेली साहब ने भी अपना नाम बदल दिया था और इँग-लैंड भागने का ही विचार कर रहे थे। वे इसी विचार से बम्बई पहुँचे थे। उन्होंने समझा था कि बम्बई से सुगमता-पूर्वक इँगलैंड भाग जायँगे। परन्तु बम्बई में पुलिस ने उन्हें पहचान लिया और हेली साहब पकड़ लिये गये।

इन पर फिर मुक़द्दमा चलाया गया। बहुत दिनों तक आप जेल में रहे। हेली साहब को कोई पहचान नहीं सका। इसलिए हेली साहब सन् १८६३ ई० में हाईकोर्ट से छूट गये। इसके बाद वे इँगलैंड चले गये।

बंकिम बाबू के प्रयत्नों से इन लोगों को सज़ा तो होगई, परन्तु यह समाचार चारों ओर फैल गया कि अब बंकिम बाबू की जान नहीं बचेगी। लोगों में यह चर्चा होने लगी कि अँगरेज़ों ने उस आदमी को एक लाख रुपये इनाम देने का वादा किया है जो बंकिम बाबू को जान से मार देगा। इसी समय बंकिम बाबू का पेशकार पकड़ लिया गया। बंकिम बाबू ने बड़ी कोशिश करके उसे छुड़ा लिया। उस समय सब लोग कहने लगे कि अब दूसरा बार बंकिम बाबू पर होगा। जब चारों ओर बंकिम-बाबू के बारे में यह सब बातें कही जा रही थीं, तब बंकिम बाबू आनन्दपूर्वक "दुर्गेशनन्दिनी" नामक उपन्यास लिख रहे थे। इन सब बातों से बंकिम बाबू का मन कुछ भी चंचल नहीं हुआ था। सन् १८६४ ई० में बंकिम बाबू ने दुर्गेशनन्दिनी का लिखना समाप्त कर दिया था।

दुर्गेशनन्दिनी के संबन्ध में लिखने के पहले, हम यहाँ बंकिम बाबू के सब उपन्यासों के लिखने का समय लिख देना आवश्यक समझते हैं।

पहले-पहल बंकिम बाबू ने अँगरेज़ी में दो कहानियाँ लिखीं, क्योंकि उस समय बंगाल में अँगरेज़ी में ही लिखने की चाल चल गई थी। परन्तु उन्होंने शीघ्र ही अपनी ग़लती मालूम कर ली। यदि बंकिम बाबू ने अँगरेज़ी में लिखना पसन्द किया होता तो आज उनका नाम भी कोई नहीं जानता और वे भारत अथवा बंगाल में उतने प्रसिद्ध नहीं होते।

बंकिम बाबू किसी एक विशेष क्षेत्र में ही प्रसिद्ध नहीं थे। वे कई क्षेत्रों के आदमी थे। उन्होंने लगभग २२ वर्ष तक लिखा है अर्थात् सन् १८६५ से १८८७ ई० तक।

उनके पहले तीन उपन्यास दुर्गेशनन्दिनी, कपालकुंडला और मृणालिनी सन् १८६५ से १८७० ई० के बीच में लिखे गये थे।

रजनी, चन्द्रशेखर, विषवृक्ष, कृष्णकान्त का बिल इत्यादि १८७३ और १८८२ ई० के बीच में लिखे गये थे।

आनन्द मठ, देवी चौधरानी और सीताराम १८८२ और १८८७ ई० के बीच में लिखे गये थे।

इस कथन से यह नहीं समझ लेना चाहिए कि बंकिम बाबू ने केवल इतने ही ग्रंथ लिखे हैं। इनके अतिरिक्त उन्होंने कमलाकान्त, लोकरहस्य, विज्ञान-रहस्य आदि भिन्न भिन्न लेख,

ऐतिहासिक धार्मिक तथा दार्शनिक लेख, भगवत् गीता और श्रीकृष्ण संबंधी लेख आदि भी लिखे हैं। उक्त कथन से प्रकट है कि बंकिम बाबू केवल कल्पना के ही मैदान में दौड़ नहीं लगाया करते थे, किन्तु वे धार्मिक और दार्शनिक प्रश्नों की भी विवेचना किया करते थे।

सब मिलाकर उन्होंने चौदह उपन्यास लिखे हैं। उनमें छः सामाजिक, पाँच ऐतिहासिक और तीन काल्पनिक हैं। ये तीन काल्पनिक उपन्यास भी ऐतिहासिक और सामाजिक दोनों ही कहे जा सकते हैं।

बंकिम बाबू के प्रथम उपन्यास का नाम दुर्गेशनन्दिनी है। इसमें सन्देह नहीं कि इससे पहले भी बँगाली-साहित्य में उपन्यास लिखे जा चुके थे। परन्तु इस बात को सब लोगों को स्वीकार करना ही पड़ेगा कि सब से पहली पुस्तक जो उपन्यास कही जा सकता है, यही दुर्गेशनन्दिनी है। यह सन् १८६५ ई० में लिखी गई थी। यद्यपि यह उपन्यास सर्व-श्रेष्ठ नहीं कहा जा सकता, तथापि यह है बहुत अच्छा। शेक्सपियर ने अपने एक नाटक में लिखा है कि प्रेम का मार्ग कभी सरल तथा सीधा नहीं होता। यही बात इस उपन्यास में भी पाई जाती है। जगतसिंह तिलोत्तमा को शैलेश्वर के मंदिर में देखते हैं और प्रथम दृष्टि में ही उसे प्यार करने लग जाते हैं। परन्तु किसी प्रकार से उन्हें सफलता का कोई मार्ग दिखलाई नहीं पड़ता।

वीरेन्द्रसिंह की स्त्री विमला है। विमला ने अपना वेष इस प्रकार बदल दिया है कि अविराम स्वामी को छोड़ कर और कोई उसे पहचान ही नहीं सकता है। विमला का चरित्र आश्चर्यजनक है, सुन्दर है और मनोहर है। वह एक नीच जाति की कन्या है और उसका विवाह वीरेन्द्रसिंह से इसी शर्त्त पर हुआ था कि इस गुप्तभेद के बारे में इस संसार में कोई भी नहीं जानने पावेगा। विमला ने सदा ही वीरेन्द्रसिंह की सेवा की, उन्हें प्रसन्न रक्खा और कभी धोखा नहीं दिया। जब उसे पता चला कि वीरेन्द्रसिंह को कुतलूखाँ ने जान से मार डाला है, तब विमला ने भी बड़ा ही उग्र रूप धारण कर लिया है और कुतलूखाँ को मार डाला है। इस प्रकार विमला की सृष्टि में बंकिम बाबू को बड़ी सफलता प्राप्त हुई है। विमला में स्त्रियों के सब गुण मौजूद हैं, परन्तु उसमें पुरुषोचित गुण भी पाये जाते हैं। इस प्रकार वह सब स्त्रियों से श्रेष्ठ होने का दावा कर सकती है।

आयेशा का चरित्र-चित्रण भी बड़ा सुन्दर है। वह जगतसिंह के प्रेम में पागल है। परन्तु इस प्रेम में उसका चरित्र दूषित नहीं होने पाया है। आयेशा कृपा की पात्री है और जो कोई इस उपन्यास को पढ़ेगा, वह आयेशा पर अवश्य ही दया करेगा। इस उपन्यास में उसका स्थान भी बहुत अच्छा है।

तिलोत्तमा का चरित्र-चित्रण भी सुन्दर है। यहाँ इतना लिख देना अनुचित न होगा कि बंकिम बाबू के इस



उपन्यास और स्काट के 'आई वैन हो' नामक उपन्यास में कई प्रकार की समानताएँ हैं और बहुत संभव है कि स्काट के उपन्यास का भी बंकिम बाबू पर प्रभाव पड़ा हो। अयेशा का चरित्र बहुत कुछ रोरेका के समान है। मैं बंकिम बाबू के इस जीवन-चरित में इन दोनों उपन्यासों की समानताओं और विषमताओं पर विचार करना नहीं चाहता। संभव हो सकता है कि दोनों उपन्यासों की समानताएँ आकस्मिक हों। जब बंकिम बाबू जीवित थे तभी लोगों ने इस प्रश्न को उठाया था। परन्तु बंकिम बाबू ने कहा था—मैंने दुर्गेशनन्दिनी लिखने के पहले "आई वैन हो" को पढ़ा ही नहीं था। जो हो, हम लोग बंकिम बाबू की बातों का ही विश्वास करेंगे और यह कहेंगे कि 'दुर्गेशनन्दिनी' 'आई वैन हो' की नक़ल नहीं है।

बारुईपुर में

सन् १८६४ ई० के मार्च महीने में बंकिम बाबू की बदली बारुईपुर में हो गई। जब बंकिम बाबू की बदली हुई तब उन्होंने दुर्गेशनन्दिनी नामक उपन्यास लिखना समाप्त कर दिया था। इस बार बंकिम बाबू बारुईपुर में केवल सात महीने रहे थे। बारुईपुर में रहते समय बंकिम बाबू ने दुर्गेशनन्दिनी और कपालकुण्डला नामक दो उपन्यास प्रकाशित करवाये थे।

सन् १८६८ ई० में बंकिम बाबू को एक नई नौकरी मिली। कर्मचारियों का वेतन ठीक करने के लिए एक कमीशन बैठा था। हाईकोर्ट के जज प्रिंसेप साहब इसके प्रधान थे। उन्होंने

इस काम से छुट्टी लेली और वे इँगलैंड चले गये। इसी स्थान पर बंकिम बाबू नियुक्त किये गये। इस काम पर उन्हें केवल दस महीने रहना पड़ा।

बहरामपुर में

बंकिम बाबू सन् १८६९ ई० में बहरामपुर बदल गये। यहाँ पर वे बहुत लोकप्रिय हो गये थे। जब बंकिम बाबू का स्वास्थ्य बहरामपुर में ख़राब होने लगा, तब उन्होंने बहरामपुर में रहना अच्छा नहीं समझा। उन्होंने अपने मन में कहा कि यहाँ से दूसरी जगह चले जाने से मेरी तंदुरुस्ती अच्छी होजायगी। परन्तु बहुत प्रयत्न करने पर भी मैजिस्ट्रेट तथा कमिश्नर ने उन्हें छुट्टी देना स्वीकार नहीं किया। उन्होंने प्रयत्न करके सन् १८७४ ई० में छुट्टी ले ही ली। जब बहरामपुर की जनता को इसका पता चला तब वे सब बंकिम बाबू के वहीं रहने के लिए प्रयत्न करने लगे। विदाई के भोज के लिए वहाँ के नगर-निवासियों ने पाँच हज़ार रुपए एकत्रित किये थे। इस धन से बहरामपुर में सात दिन तक कंगालों को कम्बल और भोजन मिलता रहा।

इस भोज के कारण वहाँ की जनता बहुत दिनों तक बंकिम बाबू की स्मृति को नहीं भुला सकी थी। इसके अतिरिक्त बंकिम बाबू और एक अँगरेज़ के मामले से भी जनता इन्हें भली भाँति जान गई थी।

अब इस झगड़े का वर्णन करना आवश्यक जान पड़ता है।

बंकिम बाबू का साहस

बंकिम बाबू डरना तो जानते ही नहीं थे। जिन शब्दों को उनके मस्तिष्क ने समझा था, उनमें डर अथवा भय तो था ही नहीं। देखने में वे अधिक बलवान् नहीं मालूम पड़ते थे और न वे बलवान् थे ही। तथापि वे शारीरिक अथवा मानसिक किसी प्रकार के भय से परिचित ही नहीं थे। बंकिम बाबू ने अपने अपूर्व साहस का कई बार परिचय दिया था। उन सबका उल्लेख करने से एक बड़ा पोथा लिखा जा सकता है। परन्तु बहरामपुरवाली घटना का उल्लेख करना आवश्यक जान पड़ता है। बहरामपुर में बंकिम बाबू और एक अँगरेज़ से झगड़ा हो गया था। इस झगड़े में बंकिम बाबू ने बड़े साहस के साथ काम किया था।

बहरामपुर में गोरों का बारिक था। इन बारिकों में कुछ गोरे रहते थे। उस बारिक के सामने एक लम्बा चौड़ा मैदान था। इस मैदान के चारों ओर सड़क थी। कचहरी इस बारिक के बाद पड़ती थी। इसलिए कचहरी जानेवालों को इस मैदान का चक्कर काट कर वहाँ जाना पड़ता था। इस प्रकार चक्कर काटने में बड़ा फेर पड़ता था और बहुत अधिक समय भी लग जाता था। इस रास्ते के सिवाय उस मैदान में से होकर एक पगडंडी भी गई थी। कुछ लोग इस पगडंडी से भी निकल जाया करते थे। परन्तु प्रायः गोरे उन्हें तंग किया करते थे।

इसलिए इस रास्ते से बहुत कम लोग पैदल आया-जाया करते थे।

बंकिम बाबू गाड़ी पर इसी रास्ते से सदा आया-जाया करते थे। उन्हें कभी किसी ने टोका नहीं था। एक दिन संध्या समय बंकिम बाबू कचहरी से लौट रहे थे। आज बंकिम बाबू पालकी पर बैठे थे और कहार लोग पालकी को ले जा रहे थे। पालकी का एक ओर का दरवाज़ा बन्द था और दूसरी ओर का खुला था। जब यह पालकी उस मैदान के बीच में पहुँची तब किसीने उस बंद दरवाज़े पर धक्का मारा। बंकिम बाबू चौकन्ने हो गये। कहारों ने पालकी रख दी। बंकिम बाबू बाहर निकल पड़े। उतर कर उन्होंने देखा कि सामने एक अँगरेज़ महोदय खड़े हैं।

साहब की चेष्टा तथा मुखाकृति से बंकिम बाबू ने समझ लिया कि यह इन्हीं की करतूत है।

अब बंकिम बाबू ने गरज कर कहा—शैतान ! तू कौन है ?

साहब ने बंकिम बाबू के इस प्रश्न का उत्तर शब्दों में नहीं, अपने कामों से दिया। अँगरेज़ ने बंकिम बाबू के हाथ को पकड़ लिया, उन्हें दूसरी ओर मोड़ दिया और ज़ोर से इस प्रकार झिड़क दिया कि बंकिम बाबू उसी पगडंडी पर दूसरी ओर चलने लग गये। इस समय बंकिम बाबू की आँखों से चिनगारियाँ निकल रही थीं।

परन्तु लाचारी थी, उस बलवान् तथा दीर्घकाय मनुष्य से हाथा-पाई करने में बंकिम बाबू ने अपने को असमर्थ समझा। जहाँ यह घटना हुई थी उसके पास ही बहुत से अँगरेज़ लोग खेल रहे थे। उन्हीं में वहाँ के जज मिस्टर वेंब्रिज भी थे। सब से पहले बंकिम बाबू ने जज साहब ही से पूछा—महोदय! क्या आपने अभी देखा है कि उस व्यक्ति ने मेरे साथ कैसा बर्ताव किया है?

इतना कह कर बंकिम बाबू ने उक्त अँगरेज़ की ओर संकेत किया। इस पर जज-साहब ने उत्तर दिया—महाशय! मैं दूर की चीज़ों को नहीं देख सकता। मैं कम देखता हूँ, मैंने कुछ भी नहीं देखा। इसके बाद बंकिम बाबू ने अन्य अँगरेज़ों से भी ऐसा ही प्रश्न किया और उन सब ने यही कहा—हमने कुछ भी नहीं देखा।

बात यह थी कि बंकिम बाबू ने उस अँगरेज़ पर मुक़द्दमा चलाने का निश्चय कर लिया था और अब अपने गवाहों को ठीक कर रहे थे। परन्तु इन लोगों में से उन्हें कोई गवाह नहीं मिला। मिस्टर वेंब्रिज (जज) तो वास्तव में कम देखते थे, परन्तु वहाँ के सब गोरे कम नहीं देखते थे। तथापि बंकिम बाबू का साहस कम नहीं हुआ। उन्होंने अन्त में सब साहबों को सावधान कर दिया कि अच्छा आप लोग ऐसा ही अदालत में भी कहिएगा।

अब उस अँगरेज़ का संक्षिप्त परिचय देना आवश्यक जान पड़ता है जिसने बंकिम बाबू की बेइज्ज़ती की थी। यह कोई साधारण अँगरेज़ नहीं था, किन्तु बहरामपुर छावनी का प्रधान संचालक था। इसका नाम कर्नल डफ़िन था। इससे प्रकट है कि उक्त साहब सरकार का एक उच्च पदाधिकारी था, बहरामपुर में उसका अच्छा दबदबा था।

जब बंकिम बाबू अपने घर पहुँच गये तब भी उनके मुँह से ठीक ठीक बात नहीं निकलती थी। क्रोध के आवेश में उनका चेहरा अब भी लाल ही था।

दूसरे दिन बंकिम बाबू ने उनके ऊपर कचहरी में उसी जज (बेंब्रिज) साहब के इजलास में दावा दायर कर दिया। जज साहब भी उस दिन उसी खेल में शामिल थे, जब सब अँगरेज़ लोग, बंकिम बाबू के अपमान होने के स्थान के पास खेल रहे थे।

कर्नल साहब के नाम सम्मन निकला और सारे अँगरेज़ों में हलचल मच गई। कर्नल साहब ने आकाश और पाताल एक करने का विचार कर लिया। उन्होंने अपने मन में कहा—काले आदमी का यह साहस कि वह मेरे विरुद्ध नालिश करे! मैं उसे दिखा दूँगा कि गोरों पर नालिश करना और फिर उसमें सफलता प्राप्त करना इतना सुगम नहीं है जितना ये लोग समझते हैं।

एक यूरोपियन की इस प्रकार इज्ज़त बिगड़ती देखकर कई गोरे अधिकारी भी गुप्त और प्रकट रूप से बंकिम बाबू की कार्रवाई

का विरोध करने लगे। कुछ यूरोपियनों ने तो बंकिम बाबू के विरुद्ध काम करना अस्वीकार कर दिया, परन्तु कुछ लोगों ने बंकिम बाबू को इस मामले में नीचा दिखाने का भगीरथ प्रयत्न किया। इस संबन्ध में इन लोगों ने बंकिम बाबू के विरुद्ध एक दल तैयार कर लिया।

कर्नल साहब को अन्त में मुजरिम के कठघरे में आकर खड़ा होना पड़ा। उस दिन कचहरी में बड़ी भीड़ थी। जज साहब का इजलास ठसाठस भर गया। शहर के सब आदमी वहाँ एकत्रित हो गये। हिन्दुस्तानी लोग इस विचित्र घटना को देखने के लिए उत्सुक थे। कोई कहता था—बंकिम बाबू कौन हैं? कोई कहता था, जज साहब कहाँ हैं? कोई कहता था—कर्नल साहब कहाँ हैं? कोई कहता था—अँगरेज़ अँगरेज़ मिल जायँगे और अन्त में बंकिम बाबू हार जायँगे।

दूसरा कहता था—नहीं, नहीं। बेंब्रिज साहब बड़े ईमानदार हैं, वे चाहे जो करें, न्याय ही करेंगे। जज साहब कोई साधारण आदमी नहीं हैं। न्यायमूर्ति हैं।

शहर के अधिक वकील और मुख़्तार भी आज यहीं उपस्थित हो गये थे। ऐसा दृश्य बहरामपुर ने पहले कभी नहीं देखा था। बहरामपुर में जितने भी वकील और मुख़्तार थे, उन सब ने बंकिम बाबू का पक्ष लिया था। उधर कर्नल साहब भी वकील करने के लिए गये थे और कितने ही काले वकीलों के दरवाज़े को खटखटाया था, परन्तु सब ने बंकिम

बाबू के विरुद्ध वकालत करना अस्वीकार कर दिया। उन्होंने यही कहा—मैंने बंकिम बाबू के वकालतनामे पर हस्ताक्षर कर दिये हैं। अब कर्नल साहब की मोह-निद्रा भंग हुई और उनके सामने एक बड़ी कड़ी समस्या उत्पन्न होगई। जब कर्नल साहब ने देखा कि कोई वकील उनकी वकालत नहीं कर सकता तब उन्होंने मुख़्तार करने का विचार किया। परन्तु मुख़्तारों ने भी नकारात्मक ही उत्तर दिया। अब साहब को आटे-दाल का भाव मालूम हुआ।

साहब लोगों ने मिलकर कमिश्नर आदि साहबों के यहाँ प्रयत्न करना प्रारंभ कर दिया। कमिश्नर साहब ने काले आदमी के पास जाना अच्छा नहीं समझा। सब गोरों ने मिलकर जज साहब के यहां ही प्रयत्न करना अच्छा समझा। परन्तु जज साहब ने अन्याय करना स्वीकार नहीं किया। उन्होंने कहा—"जबतक कर्नल साहब बंकिम बाबू से क्षमा नहीं माँगेंगे तबतक मैं इन्हें छोड़ ही नहीं सकता।"

इस बात को सुनकर सब साहबों को बड़ा आश्चर्य हुआ। परन्तु लाचारी थी, कर्नल साहब को अन्त में क्षमा माँगनी पड़ी। इस प्रकार बंकिम बाबू ने कर्नल साहब के मान को मर्दन करके ही दम लिया।

हुगली में

सन् १८७६ ई० के मार्च महीने में बंकिम बाबू की बदली हुगली को होगई। हुगली काँटालपाड़ा से बहुत दूर नहीं है।

इसलिए बंकिम बाबू अपने गाँव ही में रहते थे और हुगली में काम करते थे। हुगली में रह कर भी बंकिम बाबू ने उपन्यास लिखना बंद नहीं किया। जिन लोगों ने उनके उपन्यासों को पढ़ा है वे भली भाँति जानते हैं कि रागिनी उन का एक प्रसिद्ध उपन्यास है।

बंकिम बाबू और रागिनी

बंकिम बाबू ने सन् १८७६ ई० में रागिनी नामक उपन्यास लिखा। इस उपन्यास की रागिनी ही नायिका है। इसीलिए बंकिम बाबू ने इसका नाम रागिनी रखा है। वास्तव में यह लार्ड लिटन के (The last days of Pompeii) के आधार पर ही लिखा गया है और स्वयं बंकिम बाबू ने भी उसे स्वीकार किया है। इसमें संदेह नहीं कि दोनों पुस्तकों की नायिकाओं में ख़ूब समानता है। परन्तु भारत की परिस्थिति के अनुसार बंकिम बाबू ने उसमें कुछ परिवर्त्तन भी कर लिया है।

रागिनी एक अंधी लड़की है। यद्यपि रागिनी अपनी आँखों से नहीं देखती है तथापि उसका हृदय बहुत कोमल है। उसका हृदय फूल की तरह कोमल और बर्फ़ की तरह सफ़ेद है। वह बालिका बड़ी ही सरल है और पवित्रता तो उसका जन्म-सिद्ध अधिकार है।

सत्रह वर्ष तक उसका विवाह नहीं होता। अब उसको उसके बाल्यकाल की बातें संतुष्ट नहीं कर पातीं। इतना तो वह समझगई है कि वह अब कुछ और अधिक चाहती है, परन्तु यह नहीं समझ पाती कि वह क्या चाहती है। वह अपने हृदय को टटोलती है, परन्तु उसे तब भी यह पता नहीं चलता कि वह क्या चाहती है। उसका हृदय अब रिक्त होगया है।

अब रागिनी की वीणा के तार पहले की तरह नहीं बजते। रागिनी फिर एक बार पुरानी रागिनी छेड़ना चाहती है, परन्तु न मालूम उसकी वीणा का कौन सा तार टूट गया है। अब रागिनी के जीवन की स्वरैकता नष्ट हो गई है और लाख प्रयत्न करने पर भी पहले की सी झनकार नहीं उठती। यह सब कुछ तो है, परन्तु स्वयं रागिनी भी इस परिवर्त्तन का कारण नहीं समझती।

रागिनी की अवस्था भी अब बढ़ चली है। रागिनी ने किशोरावस्था को पार कर दिया है और अब वह युवावस्था के प्रांगण में पहुँच गई है। युवावस्था में प्रेम की लहरें अवश्य ही उठती हैं। इस समय रागिनी की विचित्र दशा है। उसके हृदय में प्रेम की लहरें उठ रही हैं। रागिनी का यह प्रेम युवावस्था की स्वाभाविक संतान है।

इसी समय रागिनी ने शचीन्द्र के शब्द को सुन लिया। ओह! इसी समय उसकी बुरी गति हो गई। शचीन्द्र की आवाज़ की मधुरता पर रागिनी अपने तन-बदन की सुध भूल

जाती है, उस पर मुग्ध हो जाती है और उसके सुनने के लिए लालायित होने लगती है।

शचीन्द्र के शब्दों ने रागिनी के केवल कानों पर ही प्रभाव नहीं डाला, किन्तु कानों के द्वारा वे रागिनी के हृदय की तह में पैठ गये। इन शब्दों ने रागिनी की अन्तरात्मा को हिला दिया। शचीन्द्र के शब्दों ने रागिनी के हृदय में उस स्वर्गीय सुख का संचार कर दिया जिसे बहुत प्रयत्न करने पर भी रागिनी व्यक्त नहीं कर सकी। रागिनी उसी दिन से शचीन्द्र पर मुग्ध हो गई और स्त्रियों का सर्वश्रेष्ठ रत्न हृदय उसे अर्पित कर दिया। रागिनी उसी दिन से शचीन्द्र की प्रेमिका हो गई, परन्तु शचीन्द्र अभी तक यह नहीं जानता था कि रागिनी उस पर मर रही है।

एक दिन शचीन्द्र ने रागिनी को स्पर्श कर दिया। भगवान् ! इस स्पर्श में कितना सुख था। और थी उसमें कितनी आकर्षण-शक्ति। यह स्पर्श लोहे को सोना बना देने वाला था। वह बिजली थी जिसने रागिनी के हृदय के सब तारों को बजा दिया, रागिनी आनन्द के मारे पागल हो गई। स्पर्श का तो अन्त हो गया, परन्तु उसका प्रभाव ? वह तो सदा के लिए अमर हो गया। रागिनी उस सुखद स्पर्श की स्मृति को नहीं भुला सकी। इस अमर स्पर्श ने रागिनी के हृदय के प्रेम को और भी अधिक गहरा बना दिया।

इसी समय रागिनी के माता-पिता ने उसके विवाह कर देने का निश्चय कर लिया। उन्होंने हीरालाल से रागिनी का विवाह करना चाहा। हीरालाल ने भी रागिनी से विवाह करना स्वीकार कर लिया। परन्तु रागिनी ने हीरालाल से शादी करना स्वीकार नहीं किया। जब रागिनी के पिता को पता चला कि वह अपना विवाह हीरालाल से नहीं करना चाहती तब उसके आश्चर्य की सीमा न रही। वह समझता था कि इस अंधी बालिका से कोई भी अपना विवाह करना स्वीकार नहीं करेगा। उसने समझा था कि रागिनी से विवाह करने की बात स्वीकार कर के हीरालाल उसके साथ बड़ा उपकार कर रहा है। उसने अपने मन में यह भी समझा कि इस विवाह से रागिनी एक ठिकाने लग जायगी। परन्तु रागिनी ने हीरालाल से विवाह करना अस्वीकार कर दिया।

यहीं से रागिनी के दुःख का श्रीगणेश होता है और वह भाँति भाँति के कष्टों को भोगती है। अन्त में अपने घर से बहुत दूर गंगाजी के किनारे वह छोड़ दी जाती है। यहाँ पर उसका कोई अपना नहीं है। अब उसके दुःख का प्याला लबालब भर जाता है और वह दुःख के मारे किंकर्त्तव्य विमूढ़ सी हो जाती है। इस दुखिया को सहायता देनेवाला अब इस संसार में कोई नहीं रह जाता।

इस दुःख के समय भी रागिनी अपने प्रेमी के बारे में बहुत सोचती है और अन्त में इसी नतीजे पर पहुँचती है कि वह

अपने प्रेमी को किसी तरह नहीं पा सकती । उसकी आशा प्रेम-लता अब मुरझा जाती है। अब वह अपने प्रेमी के बिना इस संसार में नहीं रहना चाहती । अब वह अपने इस दुःख-मय जीवन का अन्त कर देना चाहती है, क्योंकि इस संसार में आज उसका कोई सहायक नहीं रह जाता है। अब उसकी सहायता गंगाजी के सिवाय कौन कर सकता है ? वह गंगाजी में डूब मरना चाहती है और उन्हीं में कूद पड़ती है । अमरनाथ गंगा में से उसे निकाल लेता है और उसकी सेवा करता है । जब रागिनी गंगाजी में से निकलती है तब उसकी अन्तरात्मा और भी अधिक पवित्र हो उठती है । रागिनी अमरनाथ को आत्म-समर्पण कर देती है, क्योंकि वही उसका रक्षक है । अमरनाथ रागिनी से अपना विवाह करना चाहता है और उससे विवाह का प्रस्ताव भी करता है। रागिनी उससे अपना विवाह करना स्वीकार कर लेती है। परन्तु अब रागिनी किसी को धोखा नहीं देना चाहती। वह स्वीकार कर लेती है कि उसने अपने को शचीन्द्र के हाथों बेंच दिया है। रागिनी ने अमरनाथ से कहा—"मैं आपकी सब आज्ञाओं को शिरोधार्य करूँगी, परन्तु मैं आप के योग्य नहीं हूँ, मैंने अपना हृदय शचीन्द्र को दे दिया।"

अमरनाथ भी अब रागिनी से अपना विवाह नहीं करना चाहता। अमरनाथ प्रयत्न करके रागिनी का विवाह शचीन्द्र से करा देता है।

यह उपन्यास पठनीय है। इसमें और भी अनेक चरित्र हैं, परन्तु ये सब के सब रागिनी के लिए ही हैं। रागिनी इस उपन्यास की जान है। यदि यह उपन्यास किसी दूसरी पुस्तक के आधार पर न लिखा गया होता तो इससे भी बंकिम बाबू का बड़ा नाम होता।

हबड़ा में

सन् १८८१ ई० तक बंकिम बाबू ने हुगली में ही नौकरी की। सन् १८८१ ई० में इनकी बदली हबड़ा को हो गई। हबड़ा में आते ही आते इनसे और बकलैंड साहब से झगड़ा हो गया। बकलैंड साहब हबड़ा के कलक्टर थे।

बंकिम बाबू सदा न्याय ही किया करते थे। इसलिए जब वे समझते थे कि यह मामला बनावटी है, तब वे उसे छोड़ देते थे। इसपर कलेक्टर साहब इनसे चिढ़ गये थे।

एक बार कलेक्टर साहब ने यह हुक्म जारी किया कि कोई आदमी (Combustible) चीज़ों से घर न बनवाये। इसका अनुवाद एक साहब ने 'जलीय पदार्थ' कर दिया। यही अनुवाद छाप भी दिया गया।

यही नोटिस सबको बाँट दी गई। अस्सी वर्ष की एक बुढ़िया थी। उसका एक छोटा सा झोंपड़ा था। इस झोंपड़े को उसने सूखे पत्तों से बनवाया था। यह नोटिस उस बुढ़िया को भी मिली। बुढ़िया के समय में कलकत्ता-विश्वविद्यालय का

भी जन्म नहीं हुआ था। इसलिए बुढ़िया न तो अँगरेज़ी में बी० ए० पास थी और न बँगला ही जानती थी। उसने इस नोटिस को दूसरे से पढ़वाया। उन्होंने बुढ़िया से कहा—पानी से अपने घर को मत छुवाना।

उसी दिन से बुढ़िया सावधान हो गई। उसने अपने झोंपड़े को ख़ूब सूखा रक्खा।

कुछ दिनों के बाद म्युनिसपैलिटी के दूतों ने बुढ़िया से पहले तो घूस माँगी और जब घूस नहीं मिली तब इन लोगों ने बुढ़िया का चालान कर दिया। म्युनिसपैलिटी के चेयरमैन ने उस बुढ़िया को अदालत की हवा खिलाने का प्रबन्ध कर दिया।

यह मुक़द्दमा बंकिम बाबू के इजलास में भेज दिया गया। बंकिम बाबू ने इस मामले की ख़ूब जाँच की। अन्त में उन्हें विश्वास हो गया कि सिपाहियों ने व्यर्थ ही बुढ़िया को तंग किया है।

बंकिम बाबू ने बुढ़िया को छोड़ दिया और अपने फ़ैसले में लिखा—इसमें बुढ़िया का कुछ भी दोष नहीं है। बुढ़िया ने नोटिस का अर्थ नहीं समझा था। मैंने बुढ़िया को नोटिस का अर्थ समझा दिया है।

जब बकलैंड साहब को बुढ़िया के छूट जाने का समाचार मिला तब वे लाल-पीले हो गये। उन्होंने बंकिम बाबू के फ़ैसले के विरुद्ध एक नोट लिख दिया।

जब बंकिम बाबू ने इसे देखा तब वे भी बिगड़ खड़े हुए। उन्होंने उनके पास लिख भेजा—आप मेरे बड़े अफ़सर नहीं हैं। आपने किस नियम के अनुसार मेरे फ़ैसले के विरुद्ध नोट लिखा है? आप को ऐसा कभी नहीं करना चाहिए था। आप एक महीने के भीतर ही मुझसे क्षमा माँग लीजिए और यह सब काग़ज़ात कमिश्नर साहब के यहाँ भेज दीजिए।

बकलैंड साहब ने क्षमा नहीं माँगी। बंकिम बाबू ने उन्हें इसी प्रकार छोड़ना अच्छा नहीं समझा।

इसकी कथा बड़ी लम्बी-चौड़ी है। सबका आशय यह है कि अन्त में बकलैंड साहब को झख मार कर क्षमा माँगनी पड़ी। ये सब बातें कमिश्नर तथा लाट साहब के यहाँ भी पहुँची थीं।

इसके बाद बंकिम बाबू की बदली जाजपुर में होगई। जाजपुर में बंकिम बाबू केवल ६ महीने ही रहे। बाद को वे वहाँ से फिर हबड़ा लौट आये। उन दिनों रास्ता अच्छा नहीं था और रेलगाड़ी भी नहीं बनी थी। इसलिए धनवान् लोग यात्रा प्रायः पालकियों पर किया करते थे। जाजपुर से बंकिम बाबू ने रात के समय ही प्रस्थान कर दिया। सब लोग मना करते थे कि रात में आप न चलिए। संभव है कि रास्ते में डाकू मिलें। परन्तु बंकिम बाबू ने इन बातों की कुछ चिन्ता न की।

रात का समय था। रात भी अँधेरी थी। चारों ओर निस्तब्धता का अखंड राज्य था। इसी समय बंकिम बाबू

जाजपुर से जा रहे थे। रास्ते के दोनों ओर जंगल था। कहार लोग आपस में बातचीत कर रहे थे। कहारों ने अपने आगे कई आदमियों को देखा। वे सहम गये और क्षण-मात्र में सब मामला समझ गये।

कहारों ने बंकिम बाबू की पालकी को धम से ज़मीन पर पटक दिया। इस समय बंकिम बाबू नींद को झपकी ले रहे थे। उनको नींद टूट गई। उन्होंने पालकी से निकल कर कहा—कौन है रे? क्या है?

कहार तो पालकी पटक कर भाग गये थे, बंकिम बाबू के प्रश्नों का उत्तर कौन देता?

इसी बीच में डाकुओं ने बंकिम बाबू की पालकी को चारों ओर से घेर लिया। इन सब डाकुओं के हाथ में एक एक लाठी थी।

बंकिम बाबू ने देखा कि इन डाकुओं की संख्या अधिक है। तथापि उन्होंने धैर्य को नहीं छोड़ा। उन्होंने अपने हाथ में कहारों की एक लाठी उठाली और तब कहा—ख़बरदार! जो आगे बढ़ेगा मैं फ़ौरन उसे गोली से मार दूँगा।

डरके मारे डाकू भाग खड़े हुए।

बंकिम बाबू ने देवी चौधरानी नामक एक उपन्यास लिखा है। उसमें उन्होंने अपने इस अनुभव का भी चित्र खींचा है।

जब बंकिम बाबू ने इसे देखा तब वे भी बिगड़ खड़े हुए। उन्होंने उनके पास लिख भेजा—आप मेरे बड़े अफ़सर नहीं हैं। आपने किस नियम के अनुसार मेरे फ़ैसले के विरुद्ध नोट लिखा है ? आप को ऐसा कभी नहीं करना चाहिए था। आप एक महीने के भीतर ही मुझसे क्षमा माँग लीजिए और यह सब काग़ज़ात कमिश्नर साहब के यहाँ भेज दीजिए।

बकलैंड साहब ने क्षमा नहीं माँगी। बंकिम बाबू ने उन्हें इसी प्रकार छोड़ना अच्छा नहीं समझा।

इसकी कथा बड़ी लम्बी-चौड़ी है। सबका आशय यह है कि अन्त में बकलैंड साहब को झख मार कर क्षमा माँगनी पड़ी। ये सब बातें कमिश्नर तथा लाट साहब के यहाँ भी पहुँची थीं।

इसके बाद बंकिम बाबू की बदली जाजपुर में होगई। जाजपुर में बंकिम बाबू केवल ६ महीने ही रहे। बाद को वे वहाँ से फिर हबड़ा लौट आये। उन दिनों रास्ता अच्छा नहीं था और रेलगाड़ी भी नहीं बनी थी। इसलिए धनवान् लोग यात्रा प्रायः पालकियों पर किया करते थे। जाजपुर से बंकिम बाबू ने रात के समय ही प्रस्थान कर दिया। सब लोग मना करते थे कि रात में आप न चलिए। संभव है कि रास्ते में डाकू मिलें। परन्तु बंकिम बाबू ने इन बातों की कुछ चिन्ता न की।

रात का समय था। रात भी अँधेरी थी। चारों ओर निस्तब्धता का अखंड राज्य था। इसी समय बंकिम बाबू

जाजपुर से जा रहे थे। रास्ते के दोनों ओर जंगल था। कहार लोग आपस में बातचीत कर रहे थे। कहारों ने अपने आगे कई आदमियों को देखा। वे सहम गये और क्षण-मात्र में सब मामला समझ गये।

कहारों ने बंकिम बाबू की पालकी को धम से ज़मीन पर पटक दिया। इस समय बंकिम बाबू नींद की झपकी ले रहे थे। उनकी नींद टूट गई। उन्होंने पालकी से निकल कर कहा—कौन है रे? क्या है?

कहार तो पालकी पटक कर भाग गये थे, बंकिम बाबू के प्रश्नों का उत्तर कौन देता?

इसी बीच में डाकुओं ने बंकिम बाबू की पालकी को चारों ओर से घेर लिया। इन सब डाकुओं के हाथ में एक एक लाठी थी।

बंकिम बाबू ने देखा कि इन डाकुओं की संख्या अधिक है। तथापि उन्होंने धैर्य को नहीं छोड़ा। उन्होंने अपने हाथ में कहारों की एक लाठी उठाली और तब कहा—ख़बरदार! जो आगे बढ़ेगा मैं फ़ौरन उसे गोली से मार दूँगा।

डरके मारे डाकू भाग खड़े हुए।

बंकिम बाबू ने देवी चौधरानी नामक एक उपन्यास लिखा है। उसमें उन्होंने अपने इस अनुभव का भी चित्र खींचा है।

सन् १८८८ ई० में बंकिम बाबू की बदली फिर अलीपुर को हो गई।

सन् १८९० ई० में बंकिम बाबू ने पेंशन के लिए प्रार्थना-पत्र दिया। पहले तो सरकार ने इसे नामंज़ूर कर दिया। फिर पीछे से सरकार ने उनके प्रार्थनापत्र को स्वीकार कर लिया।

सन् १८९१ ई० की १४ सितम्बर को बंकिम बाबू ने चार्ज दे दिया। उन्हें चारसौ रुपया मासिक पेंशन मिलती थी।

सन् १८९२ ई० में सरकार ने बंकिम बाबू को 'राय बहा-दुर' की पदवी दी।

बंकिम बाबू और विषवृक्ष

बंकिम बाबू का 'विषवृक्ष' नामक उपन्यास अच्छा है। इसे बहुत लोग पढ़ते हैं। इसका अनुवाद भी अँगरेज़ी में होगया है। सूर्यमुखी एक दुःखी स्त्री है। वह अपने पति को बहुत चाहती है। जब उसे पता चलता है कि उसका पति एक दूसरी स्त्री को चाहता है, तब उसे बड़ा कष्ट होता है। अन्त में वह अपने पति का विवाह कुन्द से करा ही देती है। इसी कुन्द को उसका पति चाहने लग गया था। बहुत समालोचकों का विचार है कि सूर्यमुखी एक हिन्दू स्त्री थी। उसे कष्ट भी अवश्य था। तथापि उसे अपना घर नहीं छोड़ना चाहिए था। ऐसा करना तो हिन्दू-प्रथा के विरुद्ध है। लोग

सूर्यमुखी की दुर्दशा के बारे में कुछ भी नहीं जानते । उस बेचारी ने पति की इच्छित बात को पूरा कर दिया । अब उस घर में उसके लिए रहना असंभव होगया । इसलिए वह तीर्थयात्रा करने को निकल पड़ी ।

कुछ लोगों का यह भी विचार है कि इस उपन्यास में बंकिम बाबू ने विधवा-विवाह के बुरे परिणामों को दिखलाया है । परन्तु यह बात ग़लत है, क्योंकि बंकिम बाबू विधवा-विवाह के पक्षपाती थे । इस उपन्यास का प्लाट अच्छा नहीं है, तथापि इस की भाषा बहुत अच्छी है ।

कृष्णकान्त का बिल

बंकिम बाबू ने भी इस बात को स्वीकार किया है कि यह उनकी अच्छी रचनाओं में से है । इसके दो प्रधान पात्र हैं, भ्रमर और रोहिणी । भ्रमर प्रभावशाली, अभिमानी तथा कड़े मिजाज़ का आदमी है । भ्रमर की भूल से ही कुटुम्ब में अनेक आपत्तियाँ आ पड़ती हैं । गोविन्द के स्वभाव में पवित्रता का अंश भी अधिक था । गोविन्द का चरित्र भी अच्छा है, परन्तु उसके ऊपर रोहिणी की आँखों का प्रभाव अवश्य पड़ जाता है । वासना के घाट पर गोविन्द की नाव टक्कर खाती है और डूब जाती है ।

बंकिम बाबू और धन

यह देखा जाता है कि विद्वान् लोग प्रायः दरिद्र हुआ करते हैं। परन्तु बंकिम बाबू के बारे में यह नियम लागू नहीं हो सकता। बंकिम बाबू को कभी धन की कमी नहीं हुई। इनका जीवन आनन्द में ही कटा। वे यह जानते ही नहीं थे कि धनाभाव किसे कहते हैं। उन्हें ४०० रु० पेंशन मिलती थी। जब इन्हें पेंशन मिलती थी तब पुस्तकों से भी इन्हें लगभग छः हज़ार रुपये वार्षिक की आमदनी थी।

इतिहासज्ञ बंकिम बाबू

इतना तो सब लोग जानते हैं कि बंकिम बाबू एक प्रसिद्ध उपन्यास-लेखक थे। परन्तु इस बात को बहुत कम लोग जानते हैं कि इतिहास लिखने वालों के लिए बंगाल में पथदर्शक का काम बंकिम बाबू ने ही किया था। उन्होंने इतिहास के लिखने में प्रशंसनीय काम किया है।

बँगला भाषा में एक प्रकार से ऐतिहासिक पुस्तकों का अभाव सा था। यहाँ तक कि इनके पहले स्वयं बंगाल का ही कोई प्रामाणिक इतिहास नहीं था। इस विषय पर राजकृस्टो मुकर्जी, मार्शमैन और स्टुअर्ट के इतिहास अवश्य थे, परन्तु वे वास्तविक इतिहास नहीं कहे जा सकते थे, क्योंकि उनमें घटनाओं का ठीक ठीक वर्णन नहीं हुआ था।

बंकिम बाबू प्रायः उन बातों का विश्वास नहीं करते थे, जिन्हें लोगों ने बिना किसी आधार के मान लिया था। उनका यह दृढ़ विश्वास था कि हम लोगों को अपने प्राचीन काल के सुन्दर तथा विस्तृत इतिहास का अवश्य ज्ञान होना चाहिए। इसके बिना हम लोग कुछ भी उन्नति नहीं कर सकते। चालीस वर्ष पहले बंकिम बाबू ने बख़्तियार ख़िलजी को बंगाल-विजय के संबंध में संदेह प्रकट किया था। उनका यह मत साधारण रूप से स्वीकृत इतिहास के विरुद्ध था। परन्तु नये आविष्कारों से बंकिम बाबू की बात की सचाई प्रकट हो गई है।

बंकिम बाबू ने कहा था कि सब लोग इसी बात को स्वीकार करते हैं कि बंगाल के लोग शुद्ध आर्य हैं। परन्तु बंगाल में अनार्य भी बहुत थे। इन दोनों के रक्तों के मिलने से ही हम लोगों की उत्पत्ति हुई है। बंकिम बाबू ने ऐसा कह कर बड़ी वीरता का काम किया था, क्योंकि उस समय ऐसा कहना एक प्रकार का पाप ही था। पण्डित हरप्रसाद शास्त्री ने तो अब इस बात को सब तरह से सिद्ध कर दिया है। बंकिम बाबू किसी बात को देश-प्रेम तथा अभिमान के कारण मानते हों, सो बात नहीं थी, परन्तु वे प्रत्येक विषय में सत्य की खोज किया करते थे।

बंकिम बाबू कहा करते थे कि अकबर से हिन्दुओं की जितनी हानि हुई है उतनी और किसी भी राजा से नहीं।

समालोचक का काम

बंगाल में अनेक समालोचक होगये हैं। परन्तु बंकिम बाबू अपने समय के समालोचकों में से किसी से कम नहीं थे। इनकी समालोचनाओं से बँगला साहित्य को बड़ा लाभ हुआ। इनकी समालोचनाएँ गंभीर होती थीं।

निकृष्ट साहित्य से तो वे घृणा करते थे। इसे वे साहित्य-पुष्पबाटिका का काँटा समझते थे। इसीलिए इस पर वे ख़ूब हमला करते थे। जिस प्रकार वे निकृष्ट साहित्य से घृणा करते थे, उसी प्रकार वे सुन्दर और उपादेय साहित्य की प्रशंसा करते थे। बंकिम बाबू व्यर्थ ही किसी पुस्तक की न तो प्रशंसा करते थे और न निन्दा। सामयिक साहित्य की भी वे अवहेलना करते थे। वे सच्चे समालोचक थे।

बहुत लोगों का विचार है कि उनकी मृत्यु के बाद से अब तक बँगला-साहित्य में कोई ऐसा विचारवान् तथा प्रतिभाशाली समालोचक नहीं हुआ। बंकिम बाबू ने भवभूति के उत्तर-रामचरित की बड़ी अच्छी समालोचना की है। इस समालोचना का बँगला-साहित्य में उच्च स्थान है।

समालोचनाएँ प्रायः विवेचनात्मक ही होती हैं, अथवा पर्यालोचनात्मक ही। परन्तु सच्ची समालोचना में दोनों प्रकार की समालोचनाओं का समावेश होना चाहिए। बंकिम बाबू ने ऐसा ही किया है।

बँगला में 'साधना' नामक एक प्रधान पत्रिका है। इसमें श्रीरवीन्द्रनाथजी ठाकुर प्रायः लेख लिखा करते हैं। एक बार इसी 'साधना' में रवीन्द्र बाबू ने बंकिम बाबू के विषय में लिखा था—

जिस दिन से बंकिम बाबू ने समालोचना करना छोड़ दिया, उस दिन से बँगला में कोई अच्छा समालोचक पैदा नहीं हुआ। बंकिम बाबू का स्थान आज तक इस अंश में रिक्त ही है। अभी तक उसका कोई अधिकारी नहीं पैदा हुआ। बंकिम बाबू की समालोचनाएँ बँगला-साहित्य में अराजकता नहीं फैलने देती थीं। बंकिम बाबू साहित्य-जगत् के राजा थे। जो लोग बंकिम बाबू और आज-कल की समालोचनाओं के बारे में सोचेंगे वे इस बात को मुक्तकंठ से स्वीकार करेंगे कि वैसा समालोचक आजतक उत्पन्न नहीं हुआ। आज हमारे साहित्य-सिंहासन के राजा के उठ जाने से हमारे साहित्य में गड़बड़ी फैली हुई है।

एक बार और श्रीरवीन्द्रनाथ ठाकुर ने बंकिम बाबू के बारे में लिखा था—

"बंकिम बाबू से कुछ लोग रुष्ट रहा करते थे। वे लोग बंकिम बाबू को व्यर्थ ही निन्दा किया करते थे। इसका एक प्रधान कारण यह था कि जब कोई आदमी बंकिम बाबू की नक़ल करता था तब वे उसकी धज्जियाँ उड़ाये बिना नहीं रहते थे। इसलिए ये लोग उनसे चिढ़ा करते थे।

बंकिम बाबू प्रायः 'बंग दर्शन' में ही समालोचना किया करते थे। मैं उनकी समालोचनाओं को बड़े प्रेम से पढ़ा करता था। कभी कभी तो लोग उनकी समालोचनाओं से इतने चिढ़ जाते थे कि वे बंकिम बाबू को एक बहुत ही छोटा लेखक प्रमाणित करने का प्रयत्न करने लग जाते थे।

इन सब बातों के होते हुए भी बंकिम बाबू समालोचक के कर्त्तव्य से विमुख नहीं होते थे।

बंकिम बाबू कभी कभी कड़ी समालोचना किया करते थे। परन्तु वे सत्य-पथ से कभी विचलित न होते थे। इन कड़ी समालोचनाओं के कारण कई बार उन्हें गालियाँ भी खानी पड़ती थीं। कई बार लोगों ने दुर्वचनों से उनका सत्कार किया था।

चन्द्रशेखर

बंकिम बाबू के एक उपन्यास का नाम चन्द्रशेखर है। इसमें बंकिम बाबू ने प्रताप के प्रेम का चरित्र-चित्रण किया है। प्रताप के प्रेम का स्वरूप विचित्र है।

शैवलिनी एक ख़राब चरित्र की स्त्री है। उसका चरित्र भ्रष्ट है, क्योंकि वह अपने पति से सच्चा प्रेम नहीं कर सकती।

प्रताप इसी शैवलिनी के पास कई बार आते-जाते हैं। परन्तु प्रताप का प्रेम वासनामय नहीं है। शैवलिनी प्रताप को जाल में फँसाना चाहती थी। परन्तु प्रताप का प्रेम बड़ा गहरा था। यदि प्रताप ज़रा-सा भी प्रेम दिखलाता अथवा अपने प्रेम

का शैवलिनी से संकेत भी करता तो चन्द्रशेखर के घर की प्रसन्नता का अन्त ही हो जाता।

चन्द्रशेखर अपनी स्त्री का सदा विश्वास करता था। वह उसे एक पतिव्रता स्त्री समझता था।

प्रताप भी बहुत प्रेम करता था, परन्तु उसने अपने प्रेम को कभो प्रकट नहीं किया। प्रताप के प्रेम प्रकट करने का यह पहला और अन्तिम अवसर था। प्रताप लड़ाई के मैदान में मर रहा था। वह एक प्रकार से मृत्यु के पंजे में चला गया था। इसी अवसर पर उसने अपने प्रेम को प्रकट किया था। इसी समय रामानन्द स्वामी वहाँ आगये और उन्होंने प्रताप को संबोधन करके कुछ कहा। उसे सुनकर प्रताप के सारे शरीर में बिजली दौड़ गई।

शैवलिनी उन औरतों में से एक है जो अपने वासनामय प्रेम के लिए सब कुछ करने के लिए तैयार रहती है। इस पाप का उसे बदला मिला और उसका जीवन कष्टमय हो गया।

चन्द्रशेखर अपनी पुस्तकों के पढ़ने में लगे रहते थे। और अपना कर्त्तव्य समझ कर अपनी स्त्री को प्यार करते थे। इस उपन्यास के ये ही तीन प्रधान चरित्र हैं।

धार्मिक विचार

बहुत लोग बंकिम बाबू को नास्तिक कहते हैं और बहुत लोग यह भी कहते हैं कि बंकिम बाबू एक ईश्वर में विश्वास

करते थे। जो हो, इस संबंध में निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता। बंकिम बाबू ने "कृष्ण चरित" नामक एक ग्रंथ लिखा है। उक्त ग्रंथ से उनके विचार तथा ज्ञान का अच्छा पता चलता है। इससे यह भी पता चलता है कि उन्होंने महाभारत तथा कुछ पुराणों का भी अध्ययन किया था।

इस ग्रंथ से भी यही ध्वनि निकलती है कि बंकिम बाबू अवतार के सिद्धान्त को नहीं मानते थे, क्योंकि इसमें उन्होंने श्रीकृष्णचन्द्र को एक आदर्श पुरुष माना है। परन्तु कुछ लोगों का यह भी विचार है कि इस ग्रंथ में भी बंकिम बाबू ने श्रीकृष्ण-चन्द्र को अवतार स्वीकार किया है।

बंकिम बाबू ने जब इस पुस्तक को लिखा था तब उन्हें ख़ूब गालियाँ खानी पड़ी थीं। बंकिम बाबू ने श्रीकृष्णचन्द्र के चरित्र का विचित्र चित्रण किया है। जो लोग कृष्ण के भक्त हैं उनका गाली देना स्वाभाविक ही है।

बंकिम बाबू ने श्रीकृष्णचन्द्रजी की सब बातों को स्वीकार नहीं किया है। बहुत घटनाओं को तो इन्होंने क्षेपक कह दिया है। श्रीकृष्णजी की जिन घटनाओं के बारे में सब लोग विश्वास करते चले आये हैं। उन्हें बंकिम बाबू ने क्षेपक कह दिया है। इस कारण भी बहुत लोग बंकिम बाबू से चिढ़ गये थे।

उक्त ग्रंथ के अतिरिक्त बंकिम बाबू ने धर्मतत्त्व और 'श्रीमद् भगवत् गीता की टीका' नामक ग्रंथ भी लिखे हैं। परन्तु

अन्तिम पुस्तक पूरी नहीं होने पाई थी। धर्म के संबंध में बंकिम बाबू के ये ही तीन प्रधान ग्रंथ हैं।

बंकिम बाबू के धार्मिक भावों की विवेचना करते समय उनकी लड़की की एक विशेष घटना का उल्लेख करना आवश्यक जान पड़ता है। इनकी बड़ी लड़की के पुत्र उत्पन्न होनेवाला था। जब उसे प्रसव-वेदना होने लगी तब बंकिम बाबू को भी इसकी सूचना मिल गई। उसकी प्रसव-वेदना ने बड़ा ही उग्र रूप धारण कर लिया और वह व्याकुल हो उठी। बंकिम बाबू भी घबरा गये। वे अपनी लड़की को बहुत चाहते थे।

बंकिम बाबू किसी के सामने पूजा नहीं करते थे। आभ्यन्तरिक पूजा के विषय में विशेष रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता। परन्तु सब लोगों के सामने पूजा करने का आज यह पहला ही अवसर था। बंकिम बाबू ठाकुरद्वारे में पद्मासन लगाकर बैठ गये, उन्होंने अपनी आँखें मूंदलीं और ध्यानमग्न हो गये।

इसके दो वर्ष बाद एक बार और बंकिम बाबू को भगवान् की शरण लेनी पड़ी थी। इस समय उनका बड़ा नाती बीमार था और उसके बचने की कोई आशा नहीं थी।

कभी कभी बंकिम बाबू इस प्रकार ईश्वर-आराधना में लग जाते थे, परन्तु वे इसमें अपना दिन नहीं बिताते थे।

लेखन-कला और शैली

सम्पूर्ण साहित्य, गद्य और पद्य दो भागों में बाँटा जा सकता है। परन्तु अधिक समालोचकों की राय है कि यह भेद केवल ऊपरी तथा बनावटी है, क्योंकि काव्य और साहित्य की आत्मा दोनों स्थानों पर पाई जाती है। कविता भी इन लोगों के अनुसार गद्य और पद्य दोनों में पाई जाती है। इन समालोचकों के अनुसार बंकिम बाबू के उपन्यासों में ख़ूब कवित्त्व पाया जाता है। कुछ लोग बंकिम बाबू को कविता में ऊँचा स्थान नहीं देते, परन्तु गद्य में उन्हें बहुत ऊँचा स्थान देते हैं। सब लोग मुक्त कंठ से इस बात को स्वीकार करते हैं कि गद्य-रचना में वे अद्वितीय थे। जब कभी कोई नया विचार उनके मन में आता था, तभी वे ऐसा करते थे। यदि लम्बे वाक्यों से ठीक ठीक अर्थ समझ में न आवे तो यह एक बड़ा भारी दोष कहा जा सकता है। बंकिम बाबू के बड़े बड़े वाक्यों का अर्थ भी स्पष्ट ही रहता है। उनके उपन्यासों में भावों की ही प्रधानता पाई जातो है, भाषा की नहीं। इसी कारण उनकी भाषा बनावटी नहीं मालूम होती। उनकी भाषा में बड़े बड़े वाक्यों की भरमार नहीं होती।

बंकिम बाबू एक 'शैलो' के जन्मदाता कहे जा सकते हैं। इस शैली को उन्होंने स्वयं पैदा किया था। उन्होंने इसे न तो

किसी से उधार लिया था और न किसी से सीखा ही था। बंकिम बाबू की शैली उनके विचारों को प्रकट करने के लिए ही थी। बनावटीपन तो उनकी भाषा में पाया ही नहीं जाता।

किसी के शब्द-भाण्डार से भी लेखक का भाषा-ज्ञान समझा जा सकता है। बंकिम बाबू का शब्द-भाण्डार बहुत विस्तृत था। अपने भावों के व्यक्त करने का ढंग उनका बहुत ही सुन्दर था। बंकिम बाबू गँवारी तथा अस्पष्ट भाषा से घृणा करते थे। जब उनके मन में कई भाव उत्पन्न हो जाते थे, तब वे उन्हीं भावों को व्यक्त करते थे जो उस स्थान के लिए सबसे अधिक उपयुक्त होते थे। अपने भावों को इस प्रकार दबाना एक अच्छे कलाविद् का काम है और बंकिम बाबू इस कला में निपुण थे। वे न तो अपनी कल्पना की गति को ही रोकते थे और न वे विचारों के ही दास बनते थे। कभी कभी बंकिम बाबू व्यावहारिक तथा प्रांतिक भाषा का भी प्रयोग करते थे, परन्तु उन भाषाओं का प्रयोग वे बड़ी कुशलता से करते थे। कुछ लोगों का तो यहाँ तक कहना है कि इन व्यावहारिक भाषाओं का प्रयोग, कोई भी इससे अधिक अच्छी तरह कर ही नहीं सकता था। उनकी शैली बड़ी सरल और मनोहर थी।

बंकिम बाबू की शैली पूर्ण कही जा सकती है, क्योंकि उससे सरलतापूर्वक, परन्तु पूर्ण रूप से भाव प्रकट किये जा सकते हैं। बंकिम बाबू ने किसी से न तो इस शैली को सीखा है और

न कोई उसकी नक़ल ही कर सका है। इसलिए बंकिम बाबू की शैली पूर्ण कही जा सकती है। अँगरेज़ी में एक कहावत है :— Style is the man शैली ही मनुष्य है।

जब लेखक अपने विषय को भली भाँति समझता है, तभी वह शैली का जन्मदाता कहा जा सकता है। इस संसार में अच्छे और बुरे दोनों प्रकार के पदार्थ पाये जाते हैं। परन्तु उत्तम कलाविद् वही कहलाएगा जो भद्दी चीज़ों का अपने लेखों में अस्तित्व ही मिटा दे और पाठकों को एक सुन्दर संसार की सैर करावे। बंकिम बाबू की गणना भी ऐसे ही कलाविदों में की जाती है।

बंकिम बाबू के जीवन-काल में बहुत लोगों ने उनकी शैली की बड़ी निन्दा की थी। परन्तु ये लोग इस बात को भूल जाते हैं कि जब बंकिम बाबू ने लिखना प्रारंभ किया था, उन दिनों बँगला भाषा भाँति भाँति के कीचड़ों में फँसी हुई थी। बंकिम बाबू ने इसे इन कीचड़ों से अलग खींच लिया। कुछ लोग उस समय संस्कृतमिश्रित बँगला के बड़े पक्षपाती थे, कुछ लोग व्यावहारिक भाषा की स्वाधीनता की ओर अधिक ध्यान दे रहे थे।

बंकिम बाबू ने और कई अड़चनों से बँगला भाषा को स्वतंत्र बना दिया। उनकी भाषा का बंगालियों पर बड़ा प्रभाव पड़ा और बहुत से लोग उनकी भाषा की नक़ल भी करने लगे।

बंकिम बाबू की भाषा ने बंगाली साहित्य में एक नया अध्याय खोल दिया।

इसमें तो कुछ भी संदेह नहीं कि बंकिम बाबू में कई गुण थे, परन्तु हास्य रस में तो उन्होंने कमाल कर दिया था। कमलाकान्त में उन्होंने हँसी में ख़ूब सफलता प्राप्त की है। लोगों का विचार है कि कमलाकान्त एक बहुत ही ऊँचे दर्जे की पुस्तक है। उसमें सब कुछ है, करुणा है, दुःख है, हास्य है और ताना है।

पंचनन्द और गोबरगनेश आदि पुस्तकों में बंकिम बाबू की इसी पुस्तक कमलाकान्त की नक़ल की गई है, परन्तु इन लोगों को वैसी सफलता नहीं मिली।

प्रतिभा और सफलता

टेकचन्द्र ने भी बँगला भाषा में उपन्यास लिखना प्रारंभ किया था। परन्तु कला की दृष्टि से बंगाली उपन्यासों के जन्मदाता बंकिम बाबू ही कहे जा सकते हैं। उस समय बंगाली लेखकों के मार्ग में कई प्रकार की कठिनाइयाँ थीं। परन्तु बंकिम बाबू की प्रतिभा ने इन सब कठिनाइयों को दूर कर दिया। सबसे पहले उन्होंने ही बंगाल में सुरुचि उत्पन्न की थी। इनके पहले गाली-गलौज़ का बाज़ार ख़ूब गरम हो जाता था, भ्रष्ट कहानियाँ ख़ूब निकलती थीं और निन्दा तथा अपमानजनक हास्य का बोलबाला था। परन्तु उन्होंने बंगाली

साहित्य से इन बुराइयों को निकाल बाहर किया। उनकी सब कहानियों तथा उपन्यासों में हास्य रस की अच्छी सामग्री है। बंकिम बाबू के उपन्यासों में उनकी पवित्रता का परिचय मिलता है। वे जिस पदार्थ को छूते थे, वह सोना हो जाता था, जो विषय उठाते थे उसे श्रेष्ठ बना देते थे, और जिस विषय पर लिखते थे उसे स्पष्ट कर देते थे। उनकी धारणा बड़ी प्रबल थी। उनके साहित्यिक फ़ैसले बड़े मार्के के होते थे। उन्हें मनुष्य-स्वभाव का अच्छा ज्ञान था। उनमें करुणा की मात्रा अधिक थी।

विद्यासागर ने भी बंगाली भाषा का सुधार किया था। परन्तु उन्हें बंकिम बाबू की तरह सफलता प्राप्त नहीं हुई।

जिस समय बंकिम बाबू ने अपने उपन्यासों को बँगला में लिखना प्रारंभ किया था, उस समय बंगाल में अँगरेज़ी का बड़ा प्रचार था। कुछ लोग संस्कृतमय बँगला लिखते थे और व्यवहार में एक दूसरी ही भाषा आ रही थी। उस समय साहित्यिक और व्यवहार की भाषा में बड़ा अन्तर था। कुछ लोग साहित्यिक और व्यावहारिक भाषा के मिलाने की आवश्यकता ही नहीं समझते थे। ऐसे लोगों के उदाहरण देने के लिए बंगाल के प्रसिद्ध कवि माइकेल मधुसूदनदत्त का नाम लिया जा सकता है। उनका विचार था कि ऊँचे विचारों के प्रकट करने के लिए संस्कृतमय बँगला पर्याप्त है और साधारण बोल-चाल की एक भाषा अलग है ही। फिर इन दोनों के मिलाने

से क्या मतलब हासिल होगा? परन्तु बंकिम बाबू का विचार था कि इन दोनों के बीच की दीवार को तोड़ डालना चाहिए। उनको इस काम में बड़ी सफलता हुई।

बंकिम बाबू सत्य के पुजारी थे, सुन्दरता के दास थे और कल्याण के चाहनेवाले थे। भद्दी बातों का तो उन्होंने कहीं वर्णन ही नहीं किया है। उन्होंने सदा सुन्दरता का ही वर्णन किया है। दुष्टों के चरित्र का तो उन्होंने वर्णन किया ही नहीं। जब कभी उन्होंने इनके संबंध में लिखा भी है तब सज्जनों के चरित्र की उज्वलता दिखलाने के विचार से ही ऐसा किया है।

बंकिम बाबू ने अपने उपन्यासों की सहायता से हम लोगों में देशभक्ति, कर्त्तव्य-परायणता आदि अच्छे गुणों का समावेश करने का प्रयत्न किया है। इन उपन्यासों में, बंकिम बाबू ने प्रायः हम लोगों को अपनी प्राचीन सभ्यता तथा महत्ता आदि का स्मरण कराया है।

इस कथन का यह अभिप्राय नहीं है कि बंकिम बाबू भारत की बुराइयों की निन्दा ही नहीं करते थे। वे हम लोगों की कमज़ोरियों की ख़ूब कड़ी समालोचना करते थे। स्वार्थ, कायरता और धार्मिक मिथ्या विश्वासों की, बंकिम बाबू ख़ूब धज्जियाँ भी उड़ाते थे। उनका विचार था कि इन्हीं सब दुर्गुणों ने हिन्दू जाति को कमज़ोर बना दिया है।

वे प्रायः हम लोगों के सामने आदर्श चित्र ही रखा करते थे। वास्तविक संसार का भी उन्होंने चित्र खींचा है, परन्तु

अधिकतर उनके चित्र आदर्श संसार के ही हैं। इसीलिए बंकिम बाबू ने बंगाली स्त्रियों के हाथ में तलवार रखी है और उन्हें लड़ाई के मैदान में भी भेज दिया है। सब लोग जानते हैं कि बंगाल के पुरुष इस काम के लिए प्रसिद्ध नहीं हैं। मेरे इस कथन का यह अभिप्राय नहीं है कि बंगालियों ने कभी तलवार चलाई ही नहीं, परन्तु केवल यह कि, वे राजपूतों की तरह तलवार चलाने में प्रसिद्ध नहीं हैं। बंकिम बाबू के उपन्यास की औरतें लड़ाई के मैदान में पैंतरा बदलती हैं, पुरुषों की तरह युद्ध करती हैं और अन्त में पुरुषों की तरह मरती भी हैं। कदाचित् इससे बंकिम बाबू का अभिप्राय, बंगालियों को राजपूतों की वीरता का आदर्श सिखलाना हो और एक आदर्शवादी सर्वथा ऐसा कर सकता है।

बंकिम बाबू अपने उपन्यासों से देश भर में राष्ट्रीयता का मंत्र फूँकना चाहते थे और उन्हें इस काम में सफलता भी प्राप्त हुई है। उन्होंने कहा था कि एक दिन 'बन्दे मातरम्' की ध्वनि से सारा भारत गूँज उठेगा और आज हम ऐसा ही पाते भी हैं। बंगाल में तो उन्होंने अपने लेखों से जातीयता तथा राष्ट्रीयता का मंत्र फूँक दिया था।

बंकिम बाबू सौन्दर्योपासक थे। वे सब चीज़ों में सुन्दरता-ही देखते थे। उनके पहले के सब उपन्यास कला के लिए ही लिखे गये हैं, परन्तु इनके अन्तिम तीन उपन्यास, आनन्दमठ, देवी चौधरानी और सीताराम उपदेश के विचार

से लिखे गये हैं। दोनों दशाओं में बंकिम बाबू को बड़ी सफलता प्राप्त हुई है। यदि उन्होंने पिछले तीनों उपन्यासों को न लिखा होता तो हम लोग उनकी प्रतिभा के केवल एक ही अंश से परिचित होते। इस प्रकार बंकिम बाबू ने 'कला कला के लिए' और 'कला उपदेश के लिए' दोनों बातों में पथ-प्रदर्शक का काम किया है।

स्वर्गवास

भारत में बहुत लोग बहुमूत्र के शिकार हो जाते हैं। बंकिम बाबू को भी यह रोग हो गया था। बहुत दिनों तक इस रोग ने उग्र रूप नहीं धारण किया। परन्तु सन् १८६४ ई० में इस रोग ने बंकिम बाबू को तंग करना शुरू कर दिया। उनको अब नींद नहीं आती थी और दिन-रात में कई बार पेशाब करना पड़ता था।

बंकिम बाबू के घर के लोगों ने उनकी औषधि करने का प्रयत्न करना प्रारंभ कर दिया। परन्तु वे समझ गये थे कि यह रोग साधारण नहीं, घातक है। इसीलिए उन्होंनें कहा—मेरा मरना तो अब निश्चय है। यदि तुम लोग मेरी औषधि न कराओगे तो तुम्हारे मन में चिन्ता रह जायगी। इसलिए तुम लोग अपना मोह मिटा लो।

बंकिम बाबू के इस कथन के अनुसार उनका औषधि होने लगी। परन्तु "मरज़ बढ़ता गया ज्यों ज्यों दवा की।"

अब वे बहुत दुर्बल हो गये और चलना फिरना तक कठिन हो गया। उनकी मूत्र-नली में एक फोड़ा देख पड़ा। इस कारण सब लोगों की चिन्ता और भी बढ़ गई। बड़े बड़े डाक्टर बुलाये गये और उनकी राय ली जाने लगी। लोगों को विश्वास हो गया कि यही फोड़ा प्राण-घातक होगा। कलकत्ते के प्रसिद्ध डाक्टर बुलाये गये। उस समय सारे कलकत्ते में सरजरी में ओब्रायन साहब का बड़ा नाम था। सब लोगों ने उन्हीं के बुलाने की राय दी। ओब्रायन साहब बुलाये गये। उन्होंने फोड़ा देखकर कहा कि इसे शीघ्र ही चीरना चाहिए। परन्तु बंकिम बाबू ने इसका घोर प्रतिवाद किया और फोड़ा चीरने नहीं दिया।

जब सब डाक्टर लोग चले गये तब बंकिम बाबू ने कहा—चाहे जो करो, अब मैं बच नहीं सकता। अब मेरे दिन पूरे हो गये हैं और बहुत शीघ्र मैं इस संसार से उठ जाऊँगा।

अन्त में फोड़ा चीरा नहीं गया और साधारण दवाइयाँ होने लगीं। दो-तीन दिन के बाद फोड़ा आप ही आप फूट गया और उसमें से सब दूषित रक्त निकल गया। डाक्टरों ने समझा कि अब सब मामला ठीक है। स्वयं ओब्रायन साहब ने कहा—अब रोगी की जान बच जायगी। अब कोई डर नहीं है।

उसी समय बंकिम बाबू ने कहा—डर तो है ही। इतना ही नहीं, मैं अब किसी तरह बच नहीं सकता। आपलोग

अपने मन के अनुसार चिकित्सा अवश्य करते रहिए, जिससे घरवालों को मेरे मरने के बाद पश्चात्ताप न हो। दो-तीन दिन के बाद उसी पुराने घाव के पास एक नया घाव दिखलाई पड़ा। इसमें नश्तर नहीं दिया गया। इन फोड़ों के कारण बंकिम बाबू की बड़ी बुरी दशा हुई। बंकिम बाबू ने कहा कि मेरे सब संबन्धियों को तार देकर बुलालो। मेरा अब अंत समय आगया है।

आत्मीयजनों को तार दिया गया। कोई समय पर पहुँचा और कोई नहीं पहुँच सका। सन् १८६४ ई० में लगभग ५५ वर्ष की अवस्था में इनका स्वर्गवास होगया। इस समय उनकी स्त्री वहीं पर खड़ी थीं और अपने आर्त्तनाद से चारों दिशाओं को गुँजा रही थीं।

क्षण भर में यह शोक-समाचार चारों ओर फैल गया। बंकिम बाबू का मकान दर्शकों से भर गया। इसी समय सुरेश बाबू ने एक स्लिप छपवा कर शहर भर में बँटवा दी। सब लोग बंकिम बाबू के घर पर एकत्रित हो गये। कलकत्ते भर में यह समाचार बिजली की भाँति फैल गया।

बंकिम बाबू की अर्थी तैयार करने में बड़ी देर लगी। फिर यह अर्थी कालेज-स्ट्रीट और कार्नवालिस-स्ट्रीट से होकर निकली। ब्राह्म-मंदिर के पास यह अर्थी रक्खी गई। बंकिम बाबू की अर्थी के साथ बहुत आदमी थे। आदमियों का ताँता बँधता ही गया। जब शव हेदुवा के पास

पहुँचा तब भीड़ बहुत बढ़ गई थी। फिर बंकिम बाबू की अर्थी थियेटर के सामने रखी गई। धीरे धीरे बंकिम बाबू का शव नीमतल्ला-घाट पहुँच गया। यहाँ पर भीड़ और भी अधिक हो गई। बहुत लोगों ने शव के ऊपर फूलों की वर्षा की।

जब बंकिम बाबू की चिता जलने लगी तब बहुत लोग रो रहे थे।

इस प्रकार किसी कवि अथवा लेखक के लिए बङ्गाल ने पहले-ही-पहल इतना प्रेम दिखलाया तथा इतनी प्रतिष्ठा की।

विदेशों में ख्याति

बंकिम बाबू अपने समय के सबसे बड़े उपन्यास-लेखक माने गये हैं। बँगला-साहित्य में इनका ऊँचा स्थान है। इस कथन का यह अभिप्राय नहीं है कि बंकिम बाबू का नाम केवल बंगाल ही में है। उनकी पुस्तकों का अनुवाद भारत की प्रायः सभी भाषाओं में हो गया है। इसके अतिरिक्त विदेशियों ने भी बंकिम बाबू की प्रशंसा की है। बहुत लोगों ने इस बात को भी स्वीकार किया है कि बंकिम बाबू ने अँगरेज़ी उपन्यासों से बहुत सहायता ली है, परन्तु इस कथन का यह अभिप्राय नहीं है कि वे नक़ल करते थे।

जब बंगाल में बंकिम बाबू का नाम प्रसिद्ध नहीं हुआ था, तभी उनकी पुस्तक 'दुर्गेशनन्दिनी' का अनुवाद इँगलैंड में

हुआ था और वहाँ के लोगों ने इसकी प्रशंसा की थी। सन् १८७२ ई० में प्रोफ़ेसर कोवेल ने "मैकमिलन मैगेज़ीन" नामक पत्रिका में "दुर्गेशनन्दिनी" नामक उपन्यास की समालोचना लिखी थी। उस लम्बी-चौड़ी समालोचना का कुछ अंश यहाँ दिया जाता है—"दुर्गेशनन्दिनी एक ऐतिहासिक उपन्यास है। इसमें पौराणिक समयों की कथा नहीं है। इसके सब दृश्य अकबर के समय के हैं। इसमें विस्तृत घटनाओं का वर्णन नहीं है। इसमें मनुष्य-स्वभाव ही का अधिक वर्णन है। इस पुस्तक में प्रतिदिन के द्वन्द्वों का अच्छा वर्णन है। बंकिम-चन्द्र चटर्जी ने और भी कई उपन्यास लिखे हैं। परन्तु दुर्गेशनन्दिनी को उनके देशवालों ने अधिक पसंद किया है। बंगाल में इस पुस्तक का बड़ा नाम है। ऐतिहासिक उपन्यास बंकिमचन्द्र चटर्जी के उपन्यासों से ही प्रकट हुए हैं।"

प्रोफ़ेसर कोवेल साहब को छोड़ कर अन्य अँगरेज़ों ने भी बंकिम बाबू के उपन्यासों की समालोचना की है। उदाहरण के लिए हम मिस्टर फिलिप को ही ले सकते हैं। इन्होंने बंकिम बाबू के कपालकुण्डला नामक उपन्यास का अँगरेज़ी में अनुवाद किया है। उन्होंने उक्त अनुवाद के पहले एक भूमिका भी लिखी है। उस भूमिका में उन्होंने लिखा है—भारत के देशी तथा प्रांतीय साहित्यों में पढ़ने योग्य कुछ भी सामग्री नहीं है। हाँ, बंगाली साहित्य में कुछ सामग्री अवश्य है। बंकिम ने अपने उपन्यासों को अँगरेज़ी उपन्यासों के आधार पर लिखा

है। उनमें मौलिकता का अंश भी मिलता है। इसलिए यह नहीं कहा जा सकता कि बंकिम बाबू ने नक़ल किया है। बंगाली साहित्य तथा बंगाली भाषा उनके बहुत ऋणी हैं।

हाल ही में जे० डी० एण्डरसन साहब ने बंकिम बाबू की चार कहानियों का अनुवाद किया है। इसका नाम इन्होंने "India and other Stories" रक्खा है। इसमें नन्दलबोस और सुरेन्द्रनाथ कार के दो चित्र हैं। इस अनुवाद की बड़ी प्रशंसा की जाती है। कहा जाता है कि इस अनुवाद में मौलिक ग्रंथ के सब भाव आगये हैं।

मिस्टर आर० डवल्यू फ्रेज़र ने भारतवर्ष का साहित्यिक इतिहास लिखा है। उसमें उन्होंने लिखा है—भारतवर्ष के सर्व-प्रथम और प्रतिभाशाली व्यक्ति बंकिमचन्द्र चटर्जी हैं। पश्चिम के लोग इनके उपन्यासों में भारतीय जीवन और विचार की झलक अवश्य पावेंगे। बंकिम बाबू में एक नहीं, अनेक गुण हैं। बंकिमचन्द्र में पूर्व देश के कवियों की प्रतिभा है, उनमें कला है, भारत की उच्च जाति का चिह्न है, चरित्र-चित्रण करने की शक्ति है और चित्र खड़ा करने की सामर्थ्य है।

कुन्द के प्रति नगेन्द्र के प्रेम में बंकिमचन्द्र ने कमाल किया है। कुन्द का चित्र, कालिदास, वैरन और जयदेव का स्मरण दिलाता है। और सूर्यमुखी का प्रेम शेक्सपियर बाल्मीकि तथा स्टील का स्मरण कराता है।

सन् १८९५ ई० में नाइट नामक एक अँगरेज़ी महिला ने 'कृष्णकान्त की वसीयत' का अँगरेज़ी में अनुवाद किया था। इस अनुवाद की भूमिका आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय के प्रसिद्ध प्रोफ़ेसर ब्लूमहार्ड ने लिखी है। इस भूमिका में उन्होंने लिखा है—भारत में आज तक जितने उपन्यास-लेखक होगये हैं, उन सब में बंकिमचन्द्र चटर्जी सर्वश्रेष्ठ हैं। किसी दूसरे लेखक ने बंगाली साहित्य की शैली की उन्नति बंकिमचन्द्र की तरह नहीं की है। चटर्जी ने बंगाली भाषा के महत्त्व को बहुत बढ़ा दिया है। वे साहित्य के कूड़ाकरकट की बड़ी कड़ी आलोचना करते थे। बंकिमचन्द्र भारतीय जीवन तथा हिन्दू धर्म के दोषों की ख़ूब कड़ी आलोचना किया करते थे। इन सब बातों ने बंगाली साहित्य में एक प्रकार की क्रान्ति-सी पैदा कर दी है। जीवन के अन्त में बंकिम बाबू धर्म का सुधार करना चाहते थे और भगवद्गीता के उपदेशों के अनुसार काम करना चाहते थे।